m.facebook.com/Adhyatm Yog editor.adhyatmsandesh@gmail.com

मासिक

अध्यात्म संदेश

जनकल्याण एवं राष्ट्रोत्थान को समर्पित धर्म, संस्कृति, अध्यात्म चिंतन का मासिक पत्र

वर्ष:2 । अंक:10 । पृष्ठ:42 । मूल्य:निःशुल्क । इंदौर–उज्जैन । रविवार 1 मई 2022 । वैशाख/ज्येष्ठ मास (3), विक्रम संवत् 2079 । ई.संस्करण

बुद्ध पूर्णिमा 20/33

संत सूरदास 11/42

अक्षय तृतीया 03

सूर्य नमस्कार 17

प्रेरणा स्रोत
महासिद्ध गुरू गोरक्षनाथ जी

सलाहकार समिति
महंत बालक नाथ योगी जी
गद्दीनशीन महंत, मठ अरथल बोहर, रोहतक
संसद सदस्य (लोकसभा), अलवर, राजस्थान
कुलाधिपति, श्री बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय (हरियाणा)

महंत पीर योगी रामनाथ जी
भर्तृहरि गुफा, उज्जैन (मध्य प्रदेश)

महंत डॉ. योगी विलासनाथ जी
अध्यक्ष, श्री गुरू गोरक्षनाथ शिव पंचायतन मन्दिर (ट्रस्ट), गाळणे (महाराष्ट्र)

राष्ट्रसंत बालयोगी उमेशनाथ जी
पीठाधीश्वर–वाल्मीकि धाम, उज्जैन (मध्य प्रदेश)

प्रधान सम्पादक
योगी शिवनन्दन नाथ

सम्पादक मंडल

वरिष्ठ सम्पादक
डॉ. संतोष खन्ना (दिल्ली)

सम्पादक
डॉ. विदुषी शर्मा (दिल्ली)

सह सम्पादक
डॉ. दिग्विजय शर्मा (आगरा)

उपसम्पादक
सुश्री इंदु सिंह ''इन्दुश्री'' (मध्य प्रदेश)

ग्राफिक्स
IDEAwave COMMUNICATIONS

प्रकाशक एवं स्वामी
गोरक्ष शक्तिधाम सेवार्थ फ़ाउण्डेशन

editor.adhyatmsandesh@gmail.com

मासिक
अध्यात्म संदेश
जनकल्याण एवं राष्ट्रोत्थान को समर्पित धर्म, संस्कृति, अध्यात्म चिंतन का मासिक ई–पत्र

प्रतिष्ठित लेखकों/लेखिकाओं को सादर नमन् !

अध्यात्म संदेश का **आगामी अंक 1 जून** 2022 को प्रकाशित हो रहा है। आप सभी से धर्म, संस्कृति, अध्यात्म पर आधारित, ज्ञानवर्धक, समसामयिक प्रसंग, संस्मरण, कविताएँ, आलेख, लघु कथाएं आमंत्रित हैं।

–: विशेष :–
शब्द सीमा 500–750 शब्दों के मध्य होनी चाहिए इससे अधिक नहीं।

स्थाई स्तंभ :

- **अविस्मरणीय पल** (लिखिए जीवन में घटित कुछ उल्लेखनीय पलों के बारे में)
- **छोटी बातें बड़े काम की**
- **मेरी बेटी मेरा गौरव**
- **सच्चा मित्र**
- **प्रेरक प्रसंग**
- **सत्संग**

इसके अतिरिक्त : गंगा दशहरा, अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस, विश्व पर्यावरण दिवस, विश्व रक्तदान दिवस, मधुमेह जागृति दिवस, संत कबीर जयंति सम्मान पर संक्षिप्त आलेख भेजें।

अपना आलेख अंतिम तिथि 20 मई 2022 तक भेजने की कृपा करें।

विशेष:

1. लेखक/लेखिका अपनी रचना यूनिकोड/कृतिदेव – वर्ड फाइल में टाइप कराकर ही भेंजे। **पी. डी. एफ फाइल** न भेजें।
2. लेखक/लेखिका अपनी स्वरचित अप्रकाशित एवं मौलिक रचना के साथ कृपया अपना संक्षिप्त परिचय, व्हाट्सप नंबर, फोटो के साथ भेजें ।
3. आपकी स्वीकृत रचना आपके फोटो के साथ प्रकाशित की जायेगी। प्रकाशित रचना पर पारिश्रमिक देय नहीं है।
4. जनकल्याण हित में ज्ञान वर्धन हेतु यह पूर्णत: नि: शुल्क है। रचनाएँ ई–मेल: **editor.adhyatmsandesh@gmail.com** पर प्रेषित करें।

गोरक्ष शक्तिधाम सेवार्थ फाउण्डेशन
GORAKSH SHAKTIDHAM SEVARTH FOUNDATION

– योगी शिवनन्दन नाथ
प्रधान संपादक

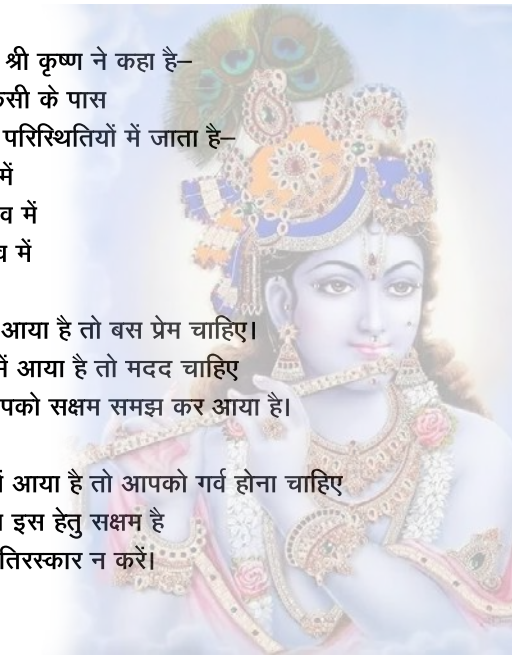

भगवान श्री कृष्ण ने कहा है–
कोई किसी के पास
तीन ही परिस्थितियों में जाता है–
1. भाव में
2. अभाव में
3. प्रभाव में

भाव से आया है तो बस प्रेम चाहिए।
अभाव में आया है तो मदद चाहिए
और आपको सक्षम समझ कर आया है।

प्रभाव में आया है तो आपको गर्व होना चाहिए
कि आप इस हेतु सक्षम है
उसका तिरस्कार न करें।

अक्षय तृतीया का अर्थ

अक्षय का अर्थ होता है ''जो कभी खत्म ना हो'' और इसीलिए ऐसा कहा जाता है, कि अक्षय तृतीया वह तिथि है जिसमें सौभाग्य और शुभ फल का कभी क्षय नहीं होता। इस दिन होने वाले कार्य मनुष्य के जीवन को कभी न खत्म होने वाले शुभ फल प्रदान करते हैं। इसलिए यह कहा जाता है, कि इस दिन मनुष्य जितने भी पुण्य कर्म तथा दान करता है उसे, उसका शुभ फल अधिक मात्रा में मिलता है और शुभ फल का प्रभाव कभी खत्म नहीं होता है।

बैजू के

शोध छात्र, हिन्दी विभाग
कोच्चिन विश्वविद्यालय
कोच्चि, केरल

अक्षया तृतीया की तिथि : अक्षय तृतीया को भारत में वैशाख महीने के शुक्ल पक्ष के तीसरे दिन मनाया जाता है। ग्रेगोरीयन कैलेंडर के अनुसार, यह अप्रैल–मई माह में आता है। इस दिन सूर्य और चंद्रमा दोनों अपने ग्रहों में सर्वश्रेष्ठ होते है। इस दिन को 'अख तीज' भी कहा जाता है। इस साल 3 मई 2022 को यह पर्व मनाया जायेगा। अक्षय तृतीया देश भर में हिंदुओं द्वारा मनाए जाने वाले सबसे पवित्र और शुभ दिनों में से एक है।

इतिहास और महत्व : पौराणिक कथाओं और प्राचीन इतिहास के अनुसार, अक्षय तृतीया दिन कई महत्वपूर्ण घटनाओं को दर्शाता है– भगवान गणेश और वेद व्यास ने महाकाव्य महाभारत को इस दिन लिखा था। इस दिन को भगवान विष्णु के छठे अवतार भगवान परशुराम की जयंती के रूप में भी मनाया जाता है।

कहते है– इस दिन, देवी अन्नपूर्णा का जन्म हुआ। इस दिन, भगवान कृष्ण ने अपने गरीब दोस्त सुदामा को धन और मौद्रिक लाभ प्रदान किया था, जो मदद के लिए अपने बचाव में आए थे। महाभारत के अनुसार, इस दिन भगवान कृष्ण ने अपने निर्वासन के दौरान पांडवों को 'अक्षय पात्र दिया था। उन्होंने इस कटोरे के साथ आशीष दिया था कि यह पात्र हमेशा असीमित मात्रा में भोजन से भरा रहेगा तथा कोई भी कभी भूखा नहीं रहेगा।

अक्षय तृतीया के दिन, गंगा नदी पृथ्वी पर स्वर्ग से उतरी थी। इस दिन कुबेर ने देवी लक्ष्मी जी की उपासना की थी, और इस तरह उन्हें भगवान के खजांची होने का काम सौंपा गया। जैन धर्म में, इस दिन भगवान आदिनाथ, जैनों के पहले भगवान की स्मृति में मनाया जाता है।

धार्मिक क्रिया व् नियम : भगवान विष्णु के भक्त, अक्षय तृतीया के दिन देवता की पूजा करते है और उपवास रखते हैं। बाद में, चावल, नमक, घी, सब्जियां, फलों और कपड़े गरीबों को वितरित करके दान किया करते है। तुलसी का पानी भगवान विष्णु के प्रतीक के रूप में चारों ओर छिड़का जाता है।

पूर्वी भारत में, यह दिन आगामी फसल के मौसम के लिए पहली बार जुताई दिन के रूप में शुरू होता है। इसके अलावा, अगले वित्तीय वर्ष के लिए एक नई ऑडिट बुक शुरू करने से पहले व्यवसायी, भगवान गणेश और देवी लक्ष्मी की पूजा करते है। इसे 'हलकहत' के नाम से जाना जाता है।

अक्षय तृतीया के दिन, कई लोग सोना और सोने से बने आभूषण भी खरीदते हैं। जैसा कि कहा जाता है कि सोना अच्छे भाग्य और धन का प्रतीक होता है, सोना खरीदना इस दिन पवित्र माना जाता है।

लोग इस दिन शादियों और लंबी यात्रा की योजना बनाते हैं। लोग इस दिन नया व्यापार उद्यम, निर्माण कार्य आदि शुरू करते है।

अन्य अनुष्ठानों की तरह इस दिन लोग गंगा में एक पवित्र स्नान भी करते है , जैसे कि एक पवित्र आग में भेंट करते है, तथा प्रसाद बनाया जाता है और दान किया जाता है।जैन इस दिन, अपनी साल भर तपस्या पूरी करते हैं और गन्ने का रस पीकर अपनी पूजा समाप्त कर देते हैं।

भविष्य में अच्छा भाग्य सुनिश्चित करने के लिए आध्यात्मिक गतिविधियों जैसे ध्यान और पवित्र मंत्र का जप करना महत्वपूर्ण माना जाता है। भगवान श्रीकृष्ण के भक्त अक्षय तृतीया के दिन चंदन का लेप बनाकर देवता को लगाते हैं। ऐसा माना जाता है कि ऐसा करने पर, व्यक्ति मौत के बाद स्वर्ग तक पहुंचने के लिए बाध्य हो जाता है।

अक्षय तृतीया की पूजा विधि : अक्षय तृतीया के दिन भगवान विष्णु और माता लक्ष्मी की विधि विधान से पूजा किया जाता है, इस दिन भगवान विष्णु, माता लक्ष्मी को चावल चढ़ाना, तुलसी के पत्तो में भोग लगाना और विधिवत पूजा पाठ करने का विधान है, फिर इस दिन दान देने की भी परंपरा है जिससे सुख समृधि की कामना किया जाती है।

अखाती तीज के पीछे कई हिन्दू मान्यताएँ हैं। कुछ इसे भगवान विष्णु के जन्म से जोड़ती हैं, तो कुछ इसे भगवान कृष्ण की लीला से। सभी मान्यताएँ आस्था से जुड़ी होने के साथ साथ बहुत रोचक भी हैं।

हिन्दू मान्यतायें : यह दिन पृथ्वी के रक्षक श्री विष्णुजी को समर्पित है। हिन्दू धर्म की मान्यता के अनुसार विष्णुजी ने श्री परशुराम के रूप में धरती पर अवतार लिया था। इस दिन परशुराम के रूप में विष्णुजी छटवी बार धरती पर अवतरित हुए थे, और इसीलिए यह दिन परशुराम के जन्मदिवस के रूप में भी मनाया जाता है। धार्मिक मान्यता के अनुसार विष्णुजी त्रेता एवं द्वापरयुग तक पृथ्वी पर चिरंजीवी (अमर) रहे। परशुराम सप्तऋषि में से एक ऋषि जमदगनीतथा रेणुका के पुत्र थे। यह ब्राह्मण कुल में जन्मे और इसीलिए अक्षय तृतीय तथा परशुराम जयंती को सभी हिन्दू बड़े धूमधाम से मनाते हैं।

दूसरी मान्यता के अनुसार त्रेता युग के शुरू होने पर धरती की सबसे पावन माने जानी वाली गंगा नदी इसी दिन स्वर्ग से धरती पर आई। गंगा नदी को भागीरथ धरती पर लाये थे। इस पवित्र नदी के धरती पर आने से इस दिन की पवित्रता और बढ़ जाती है और इसीलिए यह दिन हिंदुओं के पावन पर्व में शामिल है। इस दिन पवित्र गंगा नदी में डुबकी लगाने से मनुष्य के पाप नष्ट हो जाते हैं।

यह दिन रसोई एवं पाक (भोजन) की देवी माँ अन्नपूर्णा का जन्मदिन भी माना जाता है। अक्षय तृतीया के दिन माँ अन्नपूर्णा का भी पूजन किया जाता है और माँ से भंडारे भरपूर रखने का वरदान मांगा जाता है। अन्नपूर्णा के पूजन से रसोई तथा भोजन में स्वाद बढ़ जाता है।

दक्षिण प्रांत में इस दिन की अलग ही मान्यता है। उनके अनुसार इस दिन कुबेर (भगवान के दरबार का खजांची) ने शिवपुरम नामक जगह पर शिव की आराधना कर उन्हें प्रसन्न किया था। कुबेर की तपस्या से प्रसन्न हो कर शिवजी ने कुबेर से वर मांगने को कहा। कुबेर ने अपना धन एवं संपत्ति लक्ष्मीजी से पुनः प्राप्त करने का वरदान मांगा। तभी शंकरजी ने कुबेर को लक्ष्मीजी का पूजन करने की सलाह दी। इसीलिए तब से ले कर आजतक अक्षय तृतीया पर लक्ष्मीजी का पूजन किया जाता है। लक्ष्मी विष्णुपत्नी हैं, इसीलिए लक्ष्मीजी के पूजन के पहले भगवान विष्णु की पूजा की जाती है। दक्षिण में इस दिन लक्ष्मी यंत्रम की पूजा की जाती है, जिसमें विष्णु, लक्ष्मीजी के साथ– साथ कुबेर का भी चित्र रहता है।

अक्षय तृतीया के दिन ही महर्षि वेदव्यास ने महाभारत लिखना आरंभ की थी। इसी दिन महाभारत के युधिष्ठिर को "अक्षय पात्र" की प्राप्ति हुई थी। इस अक्षय पात्र की विशेषता थी, कि इसमें से कभी भोजन समाप्त नहीं होता था। इस पात्र के द्वारा युधिष्ठिर अपने राज्य के निर्धन एवं भूखे लोगों को भोजन दे कर उनकी सहायता करते थे। इसी मान्यता के आधार पर इस दिन किए जाने वाले दान का पुण्य भी अक्षय माना जाता है, अर्थात इस दिन मिलने वाला पुण्य कभी खत्म नहीं होता। यह मनुष्य के भाग्य को सालों साल बढाता है।

महाभारत में अक्षय तृतीया की एक और कथा प्रचलित है। इसी दिन दुशासन ने द्रौपदी का चीरहरण किया था। द्रौपदी को इस चीरहरण से बचाने के लिए श्री कृष्ण ने कभी न खत्म होने वाली साड़ी का दान किया था।

अक्षय तृतीया के पीछे हिंदुओं की एक और रोचक मान्यता है। जब श्री कृष्ण ने धरती पर जन्म लिया, तब अक्षय तृतीया के दिन उनके निर्धन मित्र सुदामा, कृष्ण से मिलने पहुंचे। सुदामा के पास कृष्ण को देने के लिए सिर्फ चार चावल के दाने थे, वही सुदामा ने कृष्ण के चरणों में अर्पित कर दिये। परंतु अपने मित्र एवं सबके मन की जानने वाले अंतर्यामी भगवान सब कुछ समझ गए और उन्होने सुदामा की निर्धनता को दूर करते हुए उसकी झोपड़ी को महल में परिवर्तित कर दिया और उसे सब सुविधाओं से सम्पन्न बना दिया। तब से अक्षय तृतीया पर किए गए दान का महत्व बढ़ गया।

भारत के उड़ीसा में अक्षय तृतीया का दिन किसानों के लिए शुभ माना जाता है। इस दिन से ही यहाँ के किसान अपने खेत को जोतना शुरू करते हैं। इस दिन उड़ीसा के जगन्नाथपूरी से रथयात्रा भी निकाली जाती है। अलग अलग प्रांत में इस दिन का अपना अलग ही महत्व है। बंगाल में इस दिन गणेशजी तथा लक्ष्मीजी का पूजन कर सभी व्यापारी द्वारा अपनी लेखा जोखा (ऑडिट बूक) की किताब शुरू करने की प्रथा है। इसे यहाँ **"हलखता"** कहते हैं।

पंजाब में भी इस दिन का बहूत महत्व है। इस दिन को नए मौसम के आगाज का सूचक माना जाता है। इस अक्षय तृतीया के दिन जाट परिवार का पुरुष सदस्य ब्रह्म मुहूर्त में अपने खेत की ओर जाते हैं। उस रास्ते में जितने अधिक जानवर एवं पक्षी मिलते हैं, उतना ही फसल तथा बरसात के लिए शुभ शगुन माना जाता है।

जैनियों में अक्षय तृतीया की मान्यताएँ : हिंदुओं के साथ साथ जैन समुदाय में भी अक्षय तृतीया का महत्व है। जैन धर्म में यह दिन उनके प्रथम चौबीस तीर्थकर में से एक, भगवान ऋषभदेव से जुड़ा है। ऋषभदेव ही बाद में जा कर भगवान आदिनाथ के नाम से प्रसिद्ध हुए। ऋषभदेव जैनी भिक्षु थे। इन्होंने ही जैन धर्म में "आहराचार्य– जैनी साधुओं तक आहार (भोजन) पहुंचाने का तरीका" प्रचारित किया था। जैनी भिक्षु कभी खुद के लिए भोजन नहीं पकाते तथा कभी भी किसी से कुछ नहीं मांगते, जो कुछ भी उन्हें लोग प्रेम से दे देते, वे उसे खा लेते।

अक्षय तृतीया के पीछे जैन समुदाय में बहुत ही रोचक कथा है। ऋषभदेव ने अपना राज्य पाठ अपने 101 पुत्रों के बीच बाँटते हुए संसार की मोह माया त्याग दी। उन्होने छः महीने तक बिना भोजन तथा पानी के तपस्या की और फिर उसके बाद वे भोजन की आवश्यकता में ध्यान से बाहर बैठ गए। यह जैनी संत आहार की प्रतीक्षा करने लगे। लोगों ने ऋषभदेव को राजा समझकर उन्हें सोना, चाँदी, हीरे, जवाहरात, हाथी, घोड़े, कपड़े और कुछ ने तो अपने राजा को खुश करने के लिए अपनी पुत्री तक दान में दे दी। परंतु ऋषभदेव को यह सब नहीं चाहिए था, वे तो सिर्फ भोजन के एक कौर की चाह में थे। इसलिए ऋषभदेव फिर से एक साल की तपस्या के लिए चले गए और उन्हें सालभर तक उपवास रखना पड़ा। फिर एक साल बाद राजा श्रेयांश हुए, जिन्होने अपने "पूर्व– भाव–स्मरण" (पिछले जन्म के विचार जानने की शक्ति) से ऋषभदेव के मन की बात समझी और उनका उपवास तुड़वा कर उन्हें गन्ने का रस पिलाया। यह दिन अक्षय तृतीया का दिन था। उस दिन से आजतक तीर्थकर ऋषभदेव के उपवास का महत्व समझते हुए जैन समुदाय अक्षय तृतीया के दिन उपवास रखकर गन्ने के रस से अपना उपवास समाप्त करते हैं। इस प्रथा को "पारणा" कहते हैं।

क्या दान देना चाहिए अक्षय तृतीया के दिन : अच्छी नियत से दी गयी हर वस्तु के दान का पुण्य लगता है। इस दिन घी, शक्कर, अनाज, फल, सब्जी, इमली, कपड़े, सोना, चाँदी आदि का दान देना चाहिए।

इस दिन छोटे से छोटे दान का भी बहुत महत्व है। फिर भी एक दिलचस्प मान्यता के अनुसार अक्षय तृतीया पर कई लोग पंखे, कूलर आदि का दान करते हैं। दरअसल इसकेव पीछे यह धारणा है की यह पर्व गर्मी के दिनों में आता है, और इसलिए गर्मी से राहत देने के उपकरण दान में देने से लोगों का भला होगा और दान देने वालों को पुण्य मिलेगा।

अक्षय तृतीया की कथा कहानी एवं उसको सुनने का महत्व: अक्षय तृतीया की कथा सुनने तथा विधि से पूजा करने से बहुत लाभ होता है। इस कथा का पुराणों में भी महत्व है। जो भी इस कथा को सुनता है, विधि से पूजन एवं दान आदि करता है, उसे सभी प्रकार के सुख, संपत्ति, धन, यश, वैभव की प्राप्ति होती है। इसी धन एवं यश की प्राप्ति के लिए वैश्य समाज के धर्मदास नामक व्यक्ति ने अक्षय तृतीया का महत्त्व जाना।

बहुत पुरानी बात है, धर्मदास अपने परिवार के साथ एक छोटे से गाँव में रहता था। वह बहुत ही गरीब था। वह हमेशा अपने परिवार के भरण– पोषण के लिए चिंतित रहता था। उसके परिवार में कई सदस्य थे। धर्मदास बहुत धार्मिक प्रवृत्ति का व्यक्ति था। एक बार उसने अक्षय तृतीया का व्रत करने का सोचा। अक्षय तृतीया के दिन सुबह जल्दी उठकर उसने गंगा में स्नान किया। फिर विधिपूर्वक भगवान विष्णु की पूजा–अर्चना एवं आरती की। इस दिन अपने सामर्थ्यानुसार जल से भरे घड़े, पंखे, जौ, सत्तू, चावल, नमक, गेंहू, गुड़, घी, दही, सोना तथा वस्त्र आदि वस्तुएँ भगवान के चरणों में रख कर ब्राह्मणों को अर्पित की। यह सब दान देख कर धर्मदास के परिवार वाले तथा उसकी पत्नी ने उसे रोकने की कोशिश की। उन्होने कहा कि अगर धर्मदास इतना सब कुछ दान में दे देगा, तो उसके परिवार का पालन– पोषण कैसे होगा। फिर भी धर्मदास अपने दान और पुण्य कर्म से विचलित नहीं हुआ और उसने ब्राह्मणों को कई प्रकार का दान दिया। उसके जीवन में जब भी अक्षय तृतीया का पावन पर्व आया, प्रत्येक बार धर्मदास ने विधि से इस दिन पूजा एवं दान आदि कर्म किया। बुढ़ापे का रोग, परिवार की परेशानी भी उसे, उसके व्रत से विचलित नहीं कर पायी।

इस जन्म के पुण्य प्रभाव से धर्मदास ने अगले जन्म में राजा कुशावती के रूप में जन्म लिया। कुशावती राजा बहुत ही प्रतापी थे। उनके राज्य में सभी प्रकार का सुख, धन, सोना, हीरे, जवाहरात, संपत्ति की किसी भी प्रकार से कमी नहीं थी। उनके राज्य में प्रजा बहुत सुखी थी। अक्षय तृतीया के पुण्य प्रभाव से राजा को वैभव एवं यश की प्राप्ति हुई, लेकिन वे कभी लालच के वश नहीं हुए एवं अपने सत्कर्म के मार्ग से विचलित नहीं हुए। उन्हें उनके अक्षय तृतीया का पुण्य सदा मिलता रहा।

जैसे भगवान ने धर्मदास पर अपनी कृपा की वैसे ही जो भी व्यक्ति इस अक्षय तृतीया की कथा का महत्त्व सुनता है और विधि विधान से पूजा एवं दान आदि करता है, उसे अक्षय पुण्य एवं यश की प्राप्ति होती है।

अर्जुन विषाद योग

गीता जी प्रथम अध्याय

यह शरीर ही गीता में वर्णित क्षेत्र है ।

चार प्रकार की सृष्टि (अण्डज, पिण्डज, स्वेदज, और स्थावर) में चौरासी लाख योनियाँ हैं- बीस लाख वृक्षादि, नौ लाख जलज, ग्यारह लाख- मि (कीडे- मकोड़े), दस लाख पंक्षीगण, तीस लाख चौपाये, और चार लाख शाखा मृग। मनुष्य योनि को छोड़कर बाकी सभी भोग योनियाँ हैं। केवल मनुष्य योनि ही कर्म योनि है और साधन धाम है । मोक्ष प्राप्ति का अवसर केवल मनुष्यों को ही प्राप्त है।

डॉ. श्याम सुन्दर पाठक 'अनन्त'

लेखक, कवि, मोटीवेशनल स्पीकर,
असिस्टेंट कमिश्नर (वस्तु एवं सेवा कर)
उत्तर प्रदेश

धृतराष्ट्र उवाचः

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः । मामकाः पाण्वाश्चौव किमकुर्वत सञ्जिय ।।

अर्थ– धृतराष्ट्र ने संजय से कहा– हे सञ्जिय, धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र में युद्ध की इच्छा से मेरे और पाण्डु के पुत्रों ने क्या किया ।

व्याख्या– गीता के इस श्लोक को समझने से पहले ये समझ लें कि गीता का प्रारम्भ तब होता है जब दस दिन का युद्ध हो चुका है और भीष्म पितामह शरशैय्या पर लेट चुके हैं और उसके बाद संजय हस्तिनापुर लौटकर धृतराष्ट्र को वहाँ की सम्पूर्ण घटना से अवगत करा रहे हैं । अतः सम्पूर्ण प्रश्न– उत्तर भूतकाल में हैं ।

आईये अब अब इस श्लोक के गूढ़ अर्थ के समझने का प्रयास करते हैं ।

वास्तविक रणभूमि कुरुक्षेत्र है। कुरु संस्कृत की– धातु से बना है जिसका अर्थ है– कार्य, क्षेत्र– का अर्थ है– मैदान । अतः कुरुक्षेत्र का अर्थ हुआ– वह क्षेत्र, या खेत या मैदान जिस पर कार्य किया जाना है। वह कार्य का क्षेत्र है– मानव शरीर। मानव शरीर ही है जिसके द्वारा ईश्वर की प्राप्ति सम्भव है। किसी अन्य योनि में ईश्वर की प्राप्ति सम्भव नहीं।

वास्तव में संघर्ष होता कहाँ है– क्या वह कोई भूखण्ड है , जो हरियाणा में है । नहीं । स्वयं गीताकार ने ही इसे स्पष्ट किया है–

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते ।

हे कौन्तेय। यह शरीर ही एक क्षेत्र (खेत) है जिसमें बोया हुआ भला और बुरा बीज संस्कार रूप से उगता अवश्य है।

यही वास्तविक कुरुक्षेत्र है। लेकिन सद्गुरु की कृपा से ईश्वर का साक्षात्कार कर साधना के माध्यम से जब परमात्म प्राप्ति की तरफ अग्रसर होता है, तब यह क्षेत्र धर्मक्षेत्र बन जाता है ।

यह शरीर ही गीता में वर्णित क्षेत्र है ।

चार प्रकार की सृष्टि (अण्डज, पिण्डज, स्वेदज, और स्थावर) में चौरासी लाख योनियाँ हैं– बीस लाख वृक्षादि, नौ लाख जलज, ग्यारह लाख– मि (कीडे– मकोड़े), दस लाख पंक्षीगण, तीस लाख चौपाये, और चार लाख शाखा मृग। मनुष्य योनि को छोड़कर बाकी सभी भोग योनियाँ हैं । केवल मनुष्य योनि ही कर्म योनि है और साधन धाम है । मोक्ष प्राप्ति का अवसर केवल मनुष्यों को ही प्राप्त है।

इसलिए गोस्वामी तुलसीदास जी भी लिखते है–

नर समान नहिं कवनिउ देहि। देत ईस बिन हेत सनेही।।
बडे भाग मानस तन पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथहिं गावा।।
साधन धाम मोक्ष कर द्वारा। पाइ न जेहिं परलोक संवारा।।

अर्थ– बड़े भाग्य से यह मनुष्य शरीर मिलता है। सभी ग्रन्थों ने यही गाया (कहा) है कि यह शरीर देवताओं को भी दुर्लभ है। यह साधन का धाम है और मोक्ष का द्वार है।

एहि तन कर फल विषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई।।
नर तन पाइ विषय मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ विष लेहीं।।

हे भाई– इस शरीर के प्राप्त होने का फल विषयभोग नहीं है (इस जगत के भोगों की तो बात ही क्या) स्वर्ग के भोग भी बहुत थोड़ा है और अन्त में दुःख देने वाला है ''क्योंकि वो भी एक ना एक दिन समाप्त हो जाना है, और फिर से नाना योनियों में भटकना है'' अतः जो लोग मनुष्य शरीर पाकर विषयों में मन लगाते हैं , वे मूर्ख अमृत के बदले विष ले लेते हैं ।

फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा।।
कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही।।

अर्थ– माया की प्रेरणा से काल, कर्म, स्वभाव और गुण से घिरा हुआ (इनके वशीभूत होकर) यह सदा भटकता ही रहता है। बिना ही कारण स्नेह करने वाले ईश्वर कभी विरले ही दया करके इसे मनुष्य शरीर देते हैं ।

नर तनु भव बारिधि कहुँ बेरो। सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो।।
करनधार सदगुर दृढ़ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा।।

अर्थ– यह मनुष्य का शरीर भवसागर (से तारने) के लिए बेड़ा (जहाज) है। मेरी कृपा ही अनुकूल वायु है। सद्गुरु इस मजबूत जहाज के कर्णधार (खेन वाले) हैं। इस प्रकार दुर्लभ साधन सुलभ होकर (भगवत्कृपा से सहज ही) उस प्राप्त हो जाते हैं।

जिस प्रकार से भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को गीता का उपदेश दिया है, ठीक उसी प्रकार से भगवान श्रीराम ने श्रीरामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में प्रजा (या यूँ कहें हम सभी के लिए) को मानव जीवन का उद्देश्य समझाते हुए मानव शरीर को ईश्वर प्राप्ति का साधन बताते हुए ठीक वही बात कही है, जो सम्पूर्ण गीता जी का सार है। इसलिए इसे श्रीरामगीता भी कहा जाता है।

इस शरीर को साधन धाम कहने का तात्पर्य ही है– कुरुक्षेत्र

अर्थात वह क्षेत्र या खेत जिसमें पूर्ण सद्गुरु की कृपा से ज्ञान रूपी बीज बोकर साधना रूपी जल द्वारा उसको इतना बढ़ाना है कि मोक्ष रूपी फल प्राप्त हो जाए। लेकिन चूँकि यह शरीर पंचतत्वों से निर्मित है और माया के आवरण से घिरा है अतः इसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति विषय रसों का रसास्वादन करना है। इसलिए कुरुक्षेत्र वास्तव में संसारभोगी का प्रतिरूप है। जबकि वह व्यक्ति जो ईश्वर की खोज में है (ईश्वरखोजी) इसी धर्मक्षेत्र में मानसिक युद्ध कर रहा है ।

ऐतिहासिक दृष्टि से महाभारत का युद्ध अवश्य कुरुक्षेत्र में लड़ा गया परन्तु गीता किसी बाहरी युद्ध की बात नहीं करती। सोचने की बात ये है कि भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को गीता का उपदेश देते रहे (और इस कार्य में भौतिक दृष्टि से देखें तो कुछ घंटे तो अवश्य लगे होंगे) और दोनों पक्षों से सब इसकी प्रतीक्षा करते रहे कि इन दोनों का वार्तालाप कब समाप्त हो और युद्ध प्रारम्भ हो। लेकिन ऐसा तो कहीं कोई जिक्र ही नहीं आता। वास्तव में गीता मन के अन्दर चलने वाले आन्तरिक युद्ध (जो कि वास्तविक महाभारत का महान युद्ध है) की बात करती है, जो एक ईश्वरखोजी के मन में तब तक चलता रहता है, जब तक की वह ब्रह्मज्ञान को प्राप्त कर और साधना के माध्यम से ईश्वर में एकाकार नहीं हो जाता।

नारी सम्मान मानवता का आधार

'यस्य पूज्यन्ते नार्यस्तु, तत्र रमन्ते देवताः'

"आज की नारी घर की सभी जिम्मेदारियां निभाने के साथ - साथ पढ़ लिखकर और समाज को आर्थिक सहयोग प्रदान करती है पारिवारिक एवं सामाजिक दायित्वों का निर्वहन करती हैं, वे कुशल डाक्टर, शिक्षक, इन्जीनियर्स, आई .ए .एस अफसर एवं सैन्य अधिकारियों के रूप में अपनी अग्रणी भूमिका निभा रहीं हैं।"

श्रीमती सुषमा सागर मिश्रा

सेवानिवृत प्रधानाचार्या
लखनऊ

नारी सदैव सम्मानीय एवं पूज्यनीय रही है। ब्रह्मा जी के पश्चात इस भूतल पर मानव को जीवन देने वाली नारी का स्थान सदैव सर्वोपरि रहा है। नारी मां, बहन, पुत्री एवं पत्नी सभी रूपों में मानवीय संबंधों को स्थापित कर उन्हें जीवन्त करती हैं। नारी को देवी रूपिणी मान कर सदैव उनकी पूजा की जाती है। इनका सम्मान पूरे संसार को बदलने की क्षमता रखता है। शक्ति की देवी मां दुर्गा, विद्या की देवी मां सरस्वती एवं ऐश्वर्य की देवी मां लक्ष्मी के रूप में सदैव पूज्यनीय मानी जाती हैं।

प्राचीन भारत में नारी का सम्मान जनक स्थान रहा है। वैदिक काल में जहां रोमसा, लोपामुद्रा, गार्गी आदि नारियों ने ऋग्वेद सूक्तियों की रचना की वहीं कैकई, मंदोदरी एवं झाँसी की रानी आदि नारियां वीरता के लिए जानी जाती थी। मां सीता, सती अनुसुइया एवं सुलोचना आदि के आदर्शो को आज भी सम्मान के साथ स्वीकार किया जाता है। उस समय नारी वेदों का अध्ययन करती थी, पुरुषों के साथ शास्त्रार्थ करती थी, उनके साथ यज्ञ में भाग लेती थी। उन्हें स्वयंवर के माध्यम से अपना जीवन साथी चुनने की आजादी थी क्योंकि वे शिक्षित थी और अपने जीवन के निर्णय लेने में समर्थ एवं स्वतंत्र थी। संक्षेप में उस समय नारी एवं पुरुष दोनों को समान सम्मान प्राप्त था और दोनों मिलकर शासन और प्रशासन को देखते थे। मनुस्मृति में भी बताया गया है कि जहां पर नारी का सम्मान होता है वहां ईश्वर की कृपा बरसती है और इसके विपरीत नारी का तिरस्कार उस समाज को पतन के गर्त में ले जाता है।

समय की गति के साथ नारियों की स्थिति में भी परिवर्तन होने लगे। मध्यकालीन युग नारी के लिए अभिशाप बन कर आया। मुगलों के आगमन के साथ ही नारी की करुण कथा का प्रारंभ हुआ। महत्वाकांक्षा के चलते युद्ध तो सेना एवं शासको के द्वारा लड़ा जाता था मगर बलिवेदी पर नारियों को को चढ़ाया जाने लगा, जिससे बचने के लिए वे घर की सीमा में कैद होकर रह गई अपनी अस्मिता रूपी सम्मान की रक्षा हेतु घूंघट को अपना लिया एवं अज्ञानता के चादर ओढ़ कर एवं पढाई लिखाई छोड़ पुरुषों पर आश्रित होकर सबला से अबला हो गई। मुगलों के शासन काल में उनके शिक्षा, कला, साहित्य तथा अन्य विभिन्न गुणों को प्राप्त करने अवसर लगभग समाप्त हो गए थे। उनकी इस स्थिति से दुखी होकर ही राष्ट्र कवि मैथली शरण जी ने लिखा –

'अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी ,
आंचल में है दूध और आँखो में है पानी।'

जैसे हर रात का सवेरा होता है, एक समय के पश्चात परि. स्थितियां करवटें लेती है ठीक उसी प्रकार नारियों की स्थिति में भी परिवर्तन आया। राजा राममोहन राय, महर्षि दयानंद एवं महात्मा गांधी आदि के सफल प्रयास से नारी का जीवन पुनः अपनी खोए हुए सम्मान एवं गरिमा को प्राप्त कर चला था। कविवर पंत जी ने अपने काव्य द्वारा जनमानस को संदेश दिया।

'मुक्त करो नारी को मानव, चिर बन्दिनी नारी को,
युग –युग की निर्मम कारा से, जननी, सखी, प्यारी को।'

वस्तुतः नारी और पुरुष जीवन रूपी रथ के दो पहिए हैं नारी तथा पुरुष का एकत्व सार्थक मानव जीवन का आदर्श है अतः नारी को बंदिनी एवं कमतर आंकना मानव की भूल है, आज की नारी पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चल रही है, कल्पना चावला किरण बेदी, मेधा पाटेकर, प्रतिभा पटिल आदि अनेक नारियों ने अपनी योग्यता से समाज में अपना सम्मानित स्थान बनाया। मदर टेरेसा, लता मंगेशकर आदि नारियों नें देश के सर्वोच्च सम्मान भारतरत्न से सुशोभित हो कर नारी का सम्मान बढ़ाया।

आज की नारी घर की सभी जिम्मेदारियां निभाने के साथ – साथ पढ़ लिखकर और समाज को आर्थिक सहयोग प्रदान करती है पारिवारिक एवं सामाजिक दायित्वों का निर्वहन करती हैं, वे कुशल डाक्टर, शिक्षक, इन्जीनियर्स, आई .ए .एस अफसर एवं सैन्य अधिकारियों के रूप में अपनी अग्रणी भूमिका निभा रहीं हैं। मगर बहुत दुख होता है जब उन्हें वह सम्मान नहीं प्राप्त होता है जिसकी वो अधिकारिणी हैं, उसके सम्मान शमन हेतु समाज में तरह– तरह के हथकंडे अपनाए जाते हैं उन्हें शारीरिक, मानसिक एवं आर्थिक हिंसा द्वारा अपमानित किया जाता है जो कि नारी के जन्म के साथ ही प्रारंभ हो जाता है बेटा बेटी में भेदभाव को अपनाकर। आज के समय में नारी के सम्मान को ढेस पहुंचाने वालों को स्वयं पर शर्मिन्दा होना चाहिए एवं अपनी दूषित मानसिकता को बदलना चाहिए।

आज की नारी अपने सम्मान की रक्षा हेतु स्वयं सजग है, वह शिक्षा गृहण कर हर क्षेत्र में अपना परचम लहरा रही है वह निरंतर अपने परिवार, समाज एवं देश की उन्नति में अपना पूर्ण सहयोग प्रदान कर रही है यद्यपि उनकी विकास यात्रा इतनी आसान न थी घर से लेकर बाहर तक उनकी राहों में अनेको बाधाएं आई मगर अपनी इमानदारी, परिश्रम एवं लगन से वे निरन्तर आगे बढ़ती चली गई। सरकार द्वारा सरकारी सेवाओं में एवं लोकसभा चुनाव, विधान सभा चुनाव में 30 नतिशत आरक्षण की मांग की गई है मगर नारी स्वयं शक्ति रूपा है अतः आगे बढ़ने के लिए उन्हें आरक्षण की आवश्यकता ही नहीं है वह तो कल भी सम्मानित थी, आज भी सम्मानीय हैं और कल भी सम्मानीय रहेगी।

नारी पराधीनता की बेड़ियों से मुक्त होकर आज पुनः अपनी गरिमा को प्राप्त कर रही है वस्तुतः नारी मानवता एवं त्याग की प्रतिमूर्ति है।

'मानवता की मूर्तिवती तू, भव्य –भाव –भूषण –भंडार,
दया–क्षमा–ममता के आकार, विश्व प्रेम की है आधार।'

मातु ये प्रतिमा तुम्हारी

सुमन मिश्रा
झांसी

हृदय में मेरे सजी है ,.....मातु ये प्रतिमा तुम्हारी।
दृग बिंदुओं से अर्घ दे,.....आरती तेरी उतारी।।

श्रद्धा ने स्नात करके,.....नेह का दीपक जलाया।
और उर की भावना ने,.....भोग माँ तेरा लगाया।।

निलय में तुमको बसाकर,.कर रहा आराधना मन।
श्वास में तुमको रमाकर,....कर रहा है साधना तन।।

व्यंजना अर्पण तुम्हें कर, समसि ने रच दी ऋचाएं।
निखिल को साक्षी बना मन, कर रहा है कामनाएं।।

मम अतल उर में बसी तुम, आज हे आराध्य मेरी।
क्या करूँ तुमको समर्पित, है नही कुछ साध्य मेरी।।

मात सब संताप अपने,.तुम्हें अर्पित कर दिये है।
अश्रु की जलधार में माँ, भाव अर्पित कर दिये है।।

मूँद कर पलकें तुम्हारे,..चरण कमलों में झुकी हूँ।
शेष क्या अब पास मेरे, सब निछावर कर चुकी हूँ।।

स्वप्न सब साकार कर दें,.....अर्चना मेरी यही है।
'सुमन' को अपनी शरण दें, कामना मेरी यही है।।

आधुनिक बोधकथा : पुनर्मूल्यांकन

सीताराम गुप्ता
पीतम पुरा, दिल्ली

एक मछुआरे ने नदी में जाल डाला। जाल डालने के बाद काफी देर तक वह बैठा रहा लेकिन कोई मछली उसके जाल में नहीं फँसी। कुछ और समय गुज़र जाने के बाद उसे अहसास हुआ कि जाल कुछ भारी हो गया है। उसने जाल को ऊपर उठा कर देखा तो पाया कि उसमें एक सुंदर–सी मछली फँसी हुई है। मछुआरे ने जाल को बाहर निकाला। पास से देखने पर पता चला कि ये मछली आम मछलियों जैसी नहीं है। उसका रंग–रूप अत्यंत आकर्षक तथा आँखें सम्मोहक थीं। मछुआरा तो जैसे सम्मोहित ही होने लगा। उसके मन में मछली के प्रति करुणा के भाव जाग्रत होने लगे। उसने फैसला किया कि वह मछली को वापस पानी में डाल देगा। मछली भी जल के अभाव में बैचेन हो चली थी।

मछुआरे ने जैसे ही मछली को पानी में पुनः प्रवाहित करने का प्रयास किया मछली ने मछुआरे से पूछा, '' मैं तो बहुत सारे जल के बीच थी वह जल कहाँ गया?'' ''जल तो जाल के अंदर से बह गया, '' मछुआरे ने बतलाया। इस पर मछली ने कहा कि वह दोबारा जल में नहीं जाना चाहती। ''मगर क्यों ?'' मछुआरे ने पुनः पूछा। मछली ने कहा, ''मेरा और जल का पुराना संबंध था। जब जाल बाहर आया तो जल मुझे छोड़कर बह गया। ऐसे निष्ठुर जल के पास दोबारा जाने की अपेक्षा मैं उसके वियोग में तड़प–तड़प कर मरना अधिक पसंद करूँगी। अतः मुझे वापस पानी में मत फेंको।'' मछुआरा मछली की बात सुन कर हैरान रह गया। जल से ऐसा प्यार करने वाली मछली उसने इससे पहले कभी नहीं देखी थी। यदि वह मछली को पानी में नहीं फेंकता है तो मछली कुछ ही क्षणों में प्राण त्याग देगी।

मछुआरा मछली को हर हाल में बचाना चाहता था अतः उसने एक बार फिर उसे समझाते हुए कहा, ''देखो, तुम सुंदर और स्वाभिमानिनी ही नहीं भावुक भी बहुत हो। तुमने जल से प्रेम किया लेकिन जल तुम्हारे प्रेम की पराकाष्ठा को समझने में असमर्थ रहा अतः उसके लिए जीवन का बलिदान करना किसी भी प्रकार से उचित नहीं। वैसे भी एक मछली पानी के बिना जीवित नहीं रह सकती। पानी उसके लिए अनिवार्य ही नहीं उसमें रहना उसका अधिकार भी है। तुम्हें अपना यह अधिकार हर्गिज़ नहीं छोड़ना चाहिए। अतः काल्पनिक मोह और मानापमान का ख़याल किए बिना तुम्हें वापस पानी में चले जाना चाहिए। यदि जीवन ही नहीं रहा तो जीवन–मूल्यों का क्या महत्त्व है?'' जीवित रह कर ही हम जीवन–मूल्यों की रक्षा कर सकते हैं तथा अनुपयोगी अथवा विकास में बाधक जीवन–मूल्यों को बदल सकते हैं

कृष्णभक्त संत शिरोमणि महाकवि सूरदास जी

डॉ. दिग्विजयकुमार शर्मा

शिक्षाविद, साहित्यकार पत्रकार,
स्तम्भ लेखक, समाजसेवी,
मोटिवेशनल स्पीकर
आगरा, उत्तर प्रदेश

इस कलियुग में ईश्वर की भक्ति ही उत्तम और अंतिम उपाय है। भक्ति से ज्ञान और वैराग्य दोनों ही अपने आप आते हैं। ईश्वर भक्ति जिसके हृदय में बसती है, उसे सपने में भी दुःख नहीं होता। जिस प्रकार सूर्य के सामने अंधकार नहीं टिक सकता, सिंह के सामने कोई पशु जाने का साहस नहीं करता। उसी प्रकार भक्त के पास भय, चिंता, शोक इत्यादि उनके पास नहीं फटकते। जिनके हृदय में भक्ति का मणि है, उन्हें बुरे विचार नहीं आते हैं। बाहर और अंतर्गत शत्रु उनमें प्रवेश नहीं करते हैं। भक्ति का इतना प्रभाव है कि जहां भक्ति है वहां अंधकार रह ही नहीं सकता। अनेक संत, परमेश्वर की भक्ति करके भगवान से एकरूप हो गए। उन्होंने अपनी भक्ति का आदर्श हमारे सामने रखा। वह संत हैं, कृष्ण भक्त शिरोमणि महाकवि सूरदास।

भारतीय धार्मिक साहित्य के अमर ग्रंथ 'सूरसागर' के रचयिता कृष्ण भक्त महाकवि सूरदास जी का जन्म आगरा के ग्राम रुनकता में एक निर्धन सारस्वत ब्राह्मण परिवार में विक्रम संवत 1535 (1478 ई.) की वैशाख शुक्ल पंचमी को हुआ था। तत्पश्चात वे आगरा मथुरा के बीच गऊ घाट पर आकर रहने लगे। इनकी कर्म भूमि मथुरा आगरा रही है। ब्रजभाषा में इनकी समस्त रचनाएं व ग्रन्थ हैं। इनकी प्रतिभा अत्यंत प्रखर थी। बचपन से ही ये काव्य और संगीत में अत्यंत निपुण थे। चौरासी वैष्णवों की वार्ता के अनुसार ये सारस्वत ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम रामदास था। गऊघाट पर ही पुष्टि सम्प्रदायाचार्य महाप्रभु वल्लभाचार्य से भेंट हुई अपनी ब्रज यात्रा के समय महाप्रभु मथुरा में निवास कर रहे थे। वहीं सूरदास जी ने उनसे दीक्षा प्राप्त की। आचार्य वल्लभाचार्य के इष्टदेव श्रीनाथ जी के प्रति इनकी अपूर्व श्रद्धा भक्ति थी। आचार्य जी की कृपा से ये श्रीनाथ जी के प्रधान कीर्तनकार नियुक्त हुए। प्रतिदिन श्रीनाथ जी के दर्शन करके उन्हें नए–नए पद सुनाने में इन्हें बड़ा सुख मिलता था। इन्होनें वात्सल्य रस व शांत रस में बड़ा ही मर्मस्पर्शी वर्णन किया है।

बालक सूरदास के अलौकिक और पवित्र संस्कार जागृत होने लगे और वे छह वर्ष की आयु में ही गांव से बाहर एकांत स्थान में एक रमणीय सरोवर के किनारे पीपल–वृक्ष के तले रहने लगे। वे लोगों को शकुन बताते थे और आश्चर्य तो यह था कि उनकी बताई बातें सही होती थीं। एक दिन एक जमींदार की गाय खो गई। सूरदासजी ने एकदम सही पता बता दिया। जमींदार उनके चमत्कार से बहुत प्रभावित हुआ और उसने उनके लिये एक झोपडी बनवा दी। सूरदासजी की कीर्ति चारों ओर फैलने लगी। दूर–दूर के गांवों से लोग उनके पास आने

लगे। उनकी मान–प्रतिष्ठा और वैभव दिन–प्रतिदिन बढने लगा। सू. रदासजी की अवस्था इस समय अठारह वर्ष की थी। उन्होंने विचार किया कि जिस मायामोह से दूर जाने के लिये घर छोडा, वह तो पीछा ही करता आ रहा है। भगवान के भजन में विघ्न होते देखकर सूरदास जी ने उस स्थान को छोड दिया । उन्हें तो भगवान के भजन और ध्यान में ही रस मिलता था ।

गऊघाट में गुरुदीक्षा प्राप्त करने के पश्चात उनके बताए अनुसार सूरदासजी ने 'भागवत' के आधार पर कृष्ण की लीलाओं का गायन प्रारंभ कर दिया। उनके सहस्र पदों से अधिक संग्रह 'सूरसागर' के नाम से विख्यात है। सूरदासजी त्यागी, विरक्त और प्रेमी भक्त थे। उन्होंने अपने उपास्य श्रीराधारानी और श्रीकृष्ण की लीलाओं का यश–वर्णन ही श्रेष्ठ मार्ग समझते है उनके अनुसार भगवान श्रीकृष्ण के अनुग्रह से मनुष्य को सद्गति मिल सकती है। उनके जीवन का एक प्रसंग है। इस छोटी–सी घटना से उनकी कृष्ण के प्रति भक्ति में उनकी वंदन भक्ति, साख्य भक्ति, दास्य भक्ति और आत्मनिवेदन भक्ति के दर्शन होते हैं ।

अनन्य कृष्णभक्त संत सूरदास नेत्रहीन थे। एक बार उन्हें रास्ता पार करके दूसरी ओर जाना था। कौन मेरी सहायता करेगा? ऐसा विचार जब वह कर रहे थे तब साक्षात भगवान श्रीकृष्ण एक बालक के रूप में आकर उन्हें रास्ता पार करने में सहायता करते हैं और रास्ता पार होने पर अपना हाथ छुडाकर चले जाते हैं। तब सूरदासजी के अंतःकरण से यह पद उत्पन्न होता है।

हात छुडाकर जायहू, निर्बल जानके मोही ।
हृदयसे जब जायहू, सबल कहोगे तबही

हे! ईश्वर, मुझे दुर्बल समझकर आप मेरा हाथ छुडाकर जा रहे हैं। पर मेरे हृदय से जाकर दिखाएं तभी मैं आपको शक्तिशाली मानूंगा ।

श्री राधाकृष्ण के अनन्य अनुरागी भक्त सूरदास जी बड़े ही प्रेमी और त्यागी भक्त थे। इनकी मानस पूजा सिद्ध थी। श्री कृष्ण लीलाओं का सुंदर और सरस वर्णन करने में ये अद्वितीय थे। गुरु की आज्ञा से इन्होंने श्रीमद्भागवत की कथा की पदों में रचना की। इनके द्वारा रचित 'सूरसागर' में श्रीमद् भागवत के दशम स्कंध की कथा का अत्यंत सरस तथा मार्मिक चित्रण है। उसमें सवा लाख पद बताए जाते हैं, यद्यपि इस समय उतने पद नहीं मिलते हैं। कहा जाता है कि एक बार भक्त श्री सूरदास जी सुरकुटी पर स्थित एक प्राचीन कुंआ जो आज भी है। उसमें गिर गए और छः दिनों तक उसी में पड़े रहे। सातवें दिन भगवान श्री कृष्ण ने प्रकट होकर इन्हें दृष्टि प्रदान की। इन्होंने भगवान श्री कृष्ण के रूप– माधुर्य का छक कर पान किया। इन्होंने भगवान श्री कृष्ण से यह वर मांगा कि ''मैंने जिन नेत्रों से आपका दर्शन किया, उनसे संसार के किसी अन्य व्यक्ति और वस्तु का दर्शन न करूं।''

इसलिए ये कुएं से निकलने के पश्चात पहले की तरह नेत्र ज्योति विहीन हो गए। कहते हैं कि इनके साथ बराबर एक लेखक रहा करता था। इनके मुंह से जो भजन निकलते, उन्हें वह लिखता जाता था। कई अवसरों पर लेखक के अभाव में भगवान श्रीकृष्ण स्वयं इनके लेखक का काम करते थे।

एक बार संगीत सम्राट तानसेन एक बार बादशाह अकबर के सामने भक्त सूरदास जी रचित एक अत्यंत सरस और भक्तिपूर्ण पद गा रहे थे। बादशाह पद की सरसता पर मुग्ध हो गए और उन्होंने सूरदास जी से स्वयं मिलने की इच्छा प्रकट की। वह तानसेन के साथ सूरदास जी से मिलने गए। उनके अनुनय विनय से प्रसन्न होकर सूरदास जी ने एक पद गाया, जिसका अभिप्राय था।

''हे मन! तुम मानव से प्रीति करो।
संसार की नश्वरता में क्या रखा है।''

बादशाह उनकी अनुपम भक्ति से अत्यंत प्रभावित हुए। भक्त श्री सूरदास जी की उपासना सख्य भाव की थी। यहां तक कि इन्हें उद्धव का अवतार भी कहा जाता है।

सूरदास के बारे में 'भक्तमाल' और श्चौरासी वैष्णवन की वार्ताश में थोड़ी–बहुत जानकारी मिल जाती है। 'आईना–ए–अकबरी' और 'मुंशियात अब्बुलफजल' में भी किसी संत सूरदास का उल्लेख है, किन्तु वे बनारस के कोई अन्य सूरदास प्रतीत होते हैं। जनुश्रुति यह अवश्य है कि अकबर बादशाह सूरदास का यश सुनकर उनसे मिल. ने आए थे। 'भक्तमाल' में इनकी भक्ति, कविता एवं गुणों की प्रशंसा है तथा इनकी अंधता का उल्लेख है। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' के अनुसार वे आगरा और मथुरा के बीच साधु के रूप में रहते थे। वे वल्लभाचार्य के दर्शन को गए और उनसे लीलागान का उपदेश पाकर कृष्ण–चरित विषयक पदों की रचना करने लगे। कालांतर में श्रीनाथ जी के मंदिर का निर्माण होने पर महाप्रभु वल्लभाचार्य ने इन्हें यहाँ कीर्तन का कार्य सौंपा। सूरदास के विषय में कहा जाता है कि वे जन्मांध थे। उन्होंने अपने को 'जन्म को आँधर' कहा भी है। यह परम्परा सूर के अंधे होने से चली है। सूर का आशय 'शूर' से है। शूर और सती मध्यकालीन भक्त साधकों के आदर्श थे।

भक्ति काल के सर्वश्रेष्ठ संत कवि सूरदास की रचनाओं को जो भी पढता है, वह श्रीकृष्ण की भक्ति में डूबे बिना नहीं रह पाता है।

उनके काव्य में, पदों में प्रकृति के सौंदर्य का, कृष्ण की बाललीलाओं का तथा जागतिक वस्तुओं का इतना सूक्ष्म, मार्मिक और अनुभवपूर्ण चित्रण मिलता है।

प्राचीनकाल में निरंतर भगवान के अनुसंधान में रहकर ईश्वर से एकरूप हुए सूरदासजी जैसे महान भक्त ही ईश्वर को ऐसा आवाहन दे सकते थे। परंतु आज के कलियुग में कभी– कभी भगवान के अस्तित्व को अनुभव करनेवाले सर्वसामान्य साधक तो केवल आर्तता से प्रार्थना कर सकते हैं कि, ''हे श्रीकृष्णा, अब हमें छोडकर मत जाना, ऐसी मैं आपसे विनती करता हूं और आपके चरण पकडता हूं। अब आप सदा के लिए मेरे हृदय में वास करें। इससे यह ध्यान में आता है कि संत सूरदासजी का भगवान पर कितना शुद्ध, निर्मल, प्रेम है और उनकी भक्ति भी कितनी श्रेष्ठ है।

वे सदैव श्रीकृष्ण की भक्ति में लीन रहते थे। सूरदासजी ने अपनी रचनाओं में श्रीकृष्ण की बाललीलाओं का बहुत ही भावमय और सुंदर वर्णन किया है। उनके पदों में बालकाल का ऐसा वर्णन है मानो उन्होंने यह सब स्वयं देखा हो। ऐसा वर्णन करना उसी भक्त के लिए संभव है जो सदैव अपने आराध्य के लोक में ही मन और वचन से वास करता हो। जो इस संसार में रहकर भी ईश्वर के अखंड अनुसंधान में हो–

सोभित कर नवनीत लिए ।
घुटुरुनि चलत रेनु तन मंडित मुख दधि लेप किए।।
चारु कपोल लोल लोचन गोरोचन तिलक दिए ।
लट लटकनि मनु मत्त मधुप गन मादक मधुहिं पिए।।
कठुला कंठ वज्र केहरि नख राजत रुचिर हिए ।

धन्य सूर एकौ पल इहिं सुख का सत कल्प जिए।।

इस पद में श्रीकृष्ण की बाल लीला का अद्‌भुत वर्णन किया है।

श्रीकृष्ण अभी बहुत छोटे हैं और यशोदा के आंगन में घुटनों के बल ही चल पाते हैं । एक दिन उन्होंने ताजा निकला माखन एक हाथ में लिया और लीला करने लगे ।

सूरदास कहते हैं कि श्रीकृष्ण के छोटे–से एक हाथ में ताजा माखन शोभायमान है और वह उस माखन को लेकर घुटनों के बल चल रहे हैं। उनके शरीर पर रेनु (मिट्टी का रज) लगी है। मुख पर दही लिपटा है, उनके कपोल (गाल) सुंदर तथा नेत्र चपल हैं। ललाट पर गोरोचन का तिलक लगा है। बालकृष्ण के बाल घुंघराले हैं। जब वह घुटनों के बल माखन लिए हुए चलते हैं तब घुंघराले बालों की लटें उनके कपोल पर झूमने लगती है, जिससे ऐसा प्रतीत होता है मानो भ्रमर मधुर रस का पान कर मतवाले हो गए हैं। उनके इस सौंदर्य की अभिवृद्धि उनके गले में पड़े कठुले (कंठहार) व सिंह नख से और बढ़ जाती है । वे कहते हैं कि श्रीकृष्ण के इस बालरूप का दर्शन यदि एक पल के लिए भी हो जाता तो जीवन सार्थक हो जाए। अन्यथा सौ कल्पों तक भी यदि जीवन हो तो निरर्थक ही है।

बाल गोपाल का ऐसा अद्वितीय, हृदय को स्पर्श करनेवाला सजीव वर्णन सुनकर लगता है जैसे श्रीकृष्ण ने स्वयं ही आकर उनके सामने यह लीला की हों। जन्म से नेत्रहीन होकर भी ऐसा सुंदर वर्णन करना, इससे पता चलता है कि सूरदास कोई साधारण भक्त नहीं थे। हृदयस्पर्शी यह प्रबल शक्ति सूरदासजी के पदों में ही मिलती है। स्नेह, वात्सल्य, ममता और प्रेम के जितने भी रूप मानवीय जीवन में मिलते हैं, लगभग सभी का समावेश किसी न किसी रूप में सूरसागर में है। सागर की तरह विस्तार और गहराई दोनों ही विशेषताएं सूर के काव्य में मिलती हैं।

सूरदास जसुमति को यह सुख सिव बिरंचि नहिं पायो।

अर्थात यशोदा को जिस सुख की प्राप्ति हुई वह सुख शिव व ब्रह्मा को भी दुर्लभ है । श्रीकृष्ण (भगवान् विष्णु) ने बाल लीलाओं के माध्यम से यह सिद्ध किया है कि भक्ति का प्रभाव कितना महत्त्वपूर्ण है। उनके जीवन के इस प्रसंग से सीखने मिलेगा कि भक्त के मन में किसी का भय नहीं होता। उनके हृदय सम्राट उनके भगवान ही होते हैं तो वहां किसी और की अथवा भय को स्थान ही कहां है।

सूरदास की एक महात्मा के रूप में ख्याति चारों ओर फैलने लगी थी। एक बार संगीत–सम्राट् तानसेन अकबर के सामने सू. रदास का एक अत्यंत सरस और भक्तिपूर्ण पद गा रहे थे। बादशाह पद की सरसता पर मुग्ध हो गए और सूरदासजी से मिले । उन्होंने सूरदासजी से कुछ पद गाने के लिए कहा तब संत सूरदास जी ने यह पद गाया, जिसका अभिप्राय यह था कि 'हे मन ! तुम माधव से प्रीति करो।' अकबर ने परीक्षा लेनी चाही। उन्होंने सूरदासजी से स्वयं की प्रशंसा में कुछ गाने के लिए कहा। सूर तो राधा–चरण–चारण–चक्रवर्ती श्रीकृष्ण के गायक थे।

सूरदासजी ने अपनी आत्मा की बात को निर्भयता से बादशाह के सामने कहने में किसी प्रकार का संकोच नहीं किया। यही सच्चे भक्त की पहचान है। भक्त की अपने ईश्वर पर पूरी निष्ठा के कारण ही तो ईश्वर भी अपने भक्त के अधीन होने के लिए विवश हो जाते हैं।

अकबर उनकी निर्भयता पर मौन साध गए। भक्त सूरदासजी के मन में सिवाय श्रीकृष्ण के दूसरा रह ही नहीं सकता था। उनका जीवन तो रासेश्वर, लीलाधाम श्रीनिकुंजनायक के प्रेम– मार्ग पर नीलाम हो चुका था।

संत सूरदासजी भक्ति को ही इस संसार में व्याप्त भय एवं कष्ट से बाहर निकलने का एकमात्र रास्ता मानते थे। उनका अनुराग ईश्वर के प्रति अप्रतिम है, इसलिए सांसारिकता के प्रति उन्होंने वैराग्य भाव दिखाया है। सांसारिक सुखों की निंदा करते हुए सूरदास ने सभी सांसारिक कार्यो, सुखों और अवस्थाओं को दोषपूर्ण माना है। उनका मानना था कि निष्पक्ष आंखों से देखने पर ही अपने भीतर की अच्छाइयां और बुराइयां दिखाई पडती हैं।

क्यौरे निंदभर सोया मुसाफर क्यौरे निंदभर सोया।
मनुजा देहि देवनकु दुर्लभ जन्म अकारन खोया।
घर दारा जोबन सुत तेरा वामें मन तेरा मोह्या।
सूरदास प्रभु चलेही पंथकु पिछे नैनूं भरभर रोया।

सूरदासजी जीव को सावधान कर रहे है कि क्यों तू इतना सोता है। यदि तूने इस अमूल्य मनुष्य जन्म को यूं ही सांसारिक बातों में गवां दिया तो अंत समय में पछताना पडेगा। इसलिए अभी से, आज से ही ईश्वर स्मरण प्रारंभ करना है।

ईश्वर के गुणों की अधिकता और उनके समक्ष अपनी लघुता का भाव उन्होंने सूरसागर के आरंभ में बार–बार प्रकट किया हैं। वे कहते हैं कि अगर उन्होंने ईश्वर–भक्ति नहीं की तो उनका इस संसार में जन्म लेना ही व्यर्थ है–

''सूरदास भगवंत भजन बिनु धरनी जननी बोझ कत मारी।''
''सूरदास प्रभु तुम्हरे भजन बिनु जैसे सूकर स्वान–सियार।''

सूरदासजी कहते हैं कि, हे श्रीकृष्ण! तुम्हारे भजन के बिना तो मैं धरती मां पर बोझ हूं। तुम्हारे भजन के बिना तो हम सुअर, कुत्ते और सियार के ही समान हैं। इधर सूरदास जी मनुष्य का बताना चाहते हैं कि जो मनुष्य ईश्वर की भक्ति नहीं करता है, उसका जीवन पशु समान है।

गोपी ग्वाल करत कौतूहल घर घर बजति बधैया।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस कों चरननि की बलि जैया।

सूरदासजी कहते हैं कि, गोपियों व ग्वालों को श्रीकृष्ण की लीलाएं देखकर अचरज होता है। श्रीकृष्ण अभी छोटे ही हैं और लीलाएं भी उनकी अनोखी हैं। इन लीलाओं को देखकर ही सब लोग बधाइयां दे रहे हैं। सूरदास कहते हैं कि हे प्रभु! आपके इस रूप के चरणों की मैं बलिहारी जाता हूँ।

सूरदास जी की आत्मनिवेदन भक्ति

कोण गती ब्रिजनाथ । अब मोरी कोण गती ब्रिजनाथ
भजनबिमुख अरु स्मरत नही । फिरत विषया साथ ।१।
हूं पतीत अपराधी पूरन । आचरु कर्म विकार । २।
काम क्रोध अरु लाभ । चित्रवत नाथ तुमही । ३।
विकार अब चरण सरण लपटाणो । राखीलो महाराज । ४।
सूरदास प्रभु पतीतपावन । सरनको ब्रीद संभार । ५।

हे! श्रीकृष्ण, हे! ब्रजनाथ, अब मेरी क्या गति होगी? मैंने जीवनभर न तो भजन किया और न आपका स्मरण ही किया। माया में लिप्त होकर मैं पतित और अपराधी हो गया। कर्म भी बुरे किए हैं। हे! नाथ, मेरा चित्त काम, क्रोध और लोभ जैसे विकारों से भरा

हुआ है। हे! महाराज, अब मैं आपके चरण पकडता हूं, मेरी लाज रखिए। सूरदासजी कहते हैं, हे! प्रभु आप पापियों का उद्धार करने के लिए प्रसिद्ध हैंय अपनी इस कीर्ति की रक्षा कीजिए और मेरा उद्धार करिए । यहां उनसे, गोपियों के माध्यम से ईश्वर के विरह में एक भक्त कैसे याचना करता है, वह सीखने मिलता है।

नाथ, अनाथन की सुधि लीजै ।
गोपी गाइ ग्वाल गौ–सुत सब दीन मलीन दिनहिं दिन छीजै
नैन नीर–धारा बाढ़ी अति ब्रज किन कर गहि लीजै ।
इतनी बिनती सुनहु हमारी, बारक तो पतियां लिखि दीजै
चरन कमल–दरसन नवनौका करुनासिन्धु जगत जसु लीजै ।
सूरदास प्रभु आस मिलन की एक बार आवन ब्रज कीजै

हे! श्रीकृष्ण, हे! नाथ, आपके जाने से अनाथ हुए गोपी, ग्वाला, गाय और उनके बछडे सब दुखी हैं और उनके शरीर दिन–पर–दिन क्षीण होते जा रहे हैं। उनके नैनों से नीर की धाराएं बह रही हैं अर्थात वे दिन–रात रोते ही रहते हैं। आप ब्रज लौटकर इन्हें सहारा दीजिए। हे प्रभु, मेरी यह छोटी–सी विनती सुन लीजिए अथवा एक छोटी–सी चिट्ठी ही लिखकर भेज दीजिए। हे करुणासिन्धु, हे तारनहार, हम आपके चरणकमलों के दर्शन करना चाहते हैं। सूरदासजी कहते हैं, हे प्रभु! आपसे मिलने की हम बहुत आस लगाए बैठे हैं, एक बार तो ब्रज में लौट आइए।

ऐसे महान भक्त विक्रम संवत 1620 के लगभग गोसाईं विट्ठल नाथ जी के सामने परसोली ग्राम में श्री राधाकृष्ण की अखंड रास में सदा के लिए लीन हो गए। इनके पद बड़े ही अनूठे हैं। इन्हें पढने से आत्मा को वास्तविक सुख शांति और तृप्ति मिलती है। श्रृंगार और वात्सल्य का जैसा वर्णन भक्त श्री सूरदास जी की रचनाओं में मिलता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।

जय जय श्रीकृष्णा।

तुम सब कुछ कर सकती हो

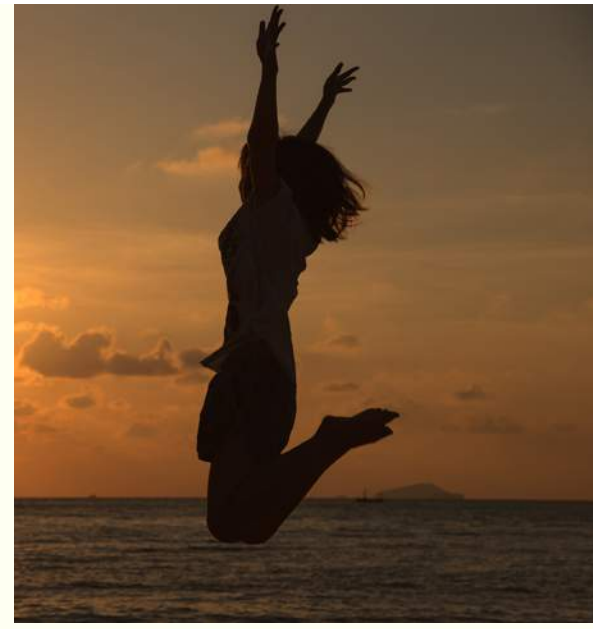

अंकिता जैन अवनी
लेखिका, कवयित्री
मध्य प्रदेश

जितनी सुंदर और गहरी हैं
आंखें तुम्हारी,
उतने ही सुंदर और गहरे रंग
तुम अपने सपनों में भर सकती हो,
कोई करे या न करे यकीन तुम पर,
पर तुम सबकुछ कर सकती हो।

मां सरस्वती की छाया तुम
अगर लक्ष्मी बन घर में
सुख–समृद्धि लाती हो,
तो वक्त पड़ने पर
रुप दुर्गा का भी धर सकती हो,
कोई करे या न करे यकीन
तुम पर,
पर तुम सबकुछ कर सकती हो।

कोई हादसा, कोई दर्दनाक परिस्थिति
तेरे शरीर को अगर तोड़ भी दे,
तब भी तेरे इरादों को छू भी नहीं सकती,
तुम तो निरंतर बहने वाली जलधारा हो
तुम कहां ठहर सकती हो,
कोई करे या न करे यकीन तुम पर
पर तुम सबकुछ कर सकती हो।

मैं जानती हूं तुम्हें,
हो नाजुक और कोमल तुम,
पर हुनर वो कमाल का रखती हो
कि किसी मुल्क पर क्या?
तुम तो विश्व पर हुकूमत कर सकती हो,
कोई करे या न करे यकीन तुम पर
पर तुम सबकुछ कर सकती हो।

बन तुम बदलाव के रथ की सारथी,
दुनिया में अपना नाम कर अमर सकती हो,
कोई करे या न करे यकीन तुम पर
पर तुम सबकुछ कर सकती हो।

बदलती जीवन शैली से तालमेल

हमेशा असंतुष्ट रहेंगे। हम जो जिन्दगी जी रहे हैं, जैसे जी रहे हैं, वह अपनी बनायी हुई है। इसे बदतर या बेहतर बनाना शत प्रतिशत हमारे हाथ में है। यकीनन फूलों की महक मन की कलुषता मिटा देती है, बारिश की बूँदें दिल के संताप हर लेती हैं और चिड़ियों की चहक मन को स्नेहिल ऊष्मा से भर देती है ,तो फिर इन्हें बचा कर और इनसे तारतम्य स्थापित कर हम अपनी ही जीवन शैली को रम्य और स्वास्थ्यवर्धक बना सकते हैं।

डॉ. कविता विकास

लेखिका व शिक्षाविद्
धनबाद, झारखण्ड

बदलाव चाहे अच्छा हो या बुरा,उसके साथ तालमेल बिठाने में परेशानी होती ही है। इसका एक मूल कारण है कि हमारा दिमाग इन बदलावों के लिए तैयार होने नहीं देता, क्योंकि हम सब जीवन को लेकर अपने दिमाग में एक खाका खींच कर रखते हैं और एक ढर्रे पर चलने के आदि हो जाते हैं। यहाँ पर समझना जरूरी है कि हर परिवर्तन हमें कुछ सिखाता है और जीवन हमारे चाहने न चाहने से भी चलता रहता है। हाँ, जो प्राप्त हैं,वो बदलते नहीं। इन बातों को समझ लेने से हमारी सोच का दायरा इतना विस्तृत हो जाता है कि जीवन में आने वाले छोटे– मोटे बदलाव हमें प्रभावित नहीं कर पाते हैं। ये छोटे बदलाव कब बड़े बन जाते हैं,पता ही नहीं चलता। जीवन अवसर नहीं अनुभव का नाम है। अपने अनुभव से ही तो हम जान पाए हैं कि मिठाई चखी जाती है, रोटी खाई जाती है और खाने से पहले कमायी जाती है। भोजन ही नहीं भूख को भी पकाना होता है।जीवन के इस उसूल की बात करें तो जमाना बदला हुआ भी नहीं लगेगा।

हर समय अगर हम अपनी हार– जीत, दुःख– सुख का रोना रोते रहेंगे तो बेचैन ही रहेंगे। ओशो का मानना है कि जीवन तथ्य नहीं, केवल एक संभावना है, जैसे बीज,जिसमें हजारों फूल छिपे हैं,पर दिखते कहाँ हैं? जिस प्रकार फूल और खुशबू एक साथ जुड़े होते हैं,वैसे ही सुख– दुःख, हर्ष– विषाद भी अटल हैं। लाभ– हानि, संयोग– वियोग आदि अपने आप होते हैं और गायब हो जाते हैं। यदि आप अपनी मौजूदा स्थिति को स्वीकार कर यह समझ जाएँ कि ये परिस्थितियाँ जीवन भर नहीं रहने वाली हैं, तो यकीनन आप बेहतर महसूस करेंगे। अतीत का अवलोकन करें तो पाएँगे कि हर सुख या दुःख एक निश्चित अवधि के लिए ही था। इन सभी अनुकूल– प्रतिकूल क्षणों में मन का एक निश्चित सम्बंध था। मन की भावना और कल्पना से ही मनुष्य सम्राट या भिखारी होता है। सुखी– सम्पन्न होकर भी मन में शांति नहीं है तो ऐसा मनुष्य उस गरीब से भी ज्यादा विपन्न है जिसके पास कल की चिंता

के लिए वक्त नहीं है। मन बाँधने की वस्तु है। यह तो मरीचिका का मृग है जिसके लिए सम्यक् उदासीनता ही भली है। यह प्यास नहीं बुझाएगा,तृष्णा ही रचेगा। इसे आवारगी ही पसंद है, घूमता रहेगा निरंतर, निरुद्देश्य। मानुष चेतना जितनी परिष्कृत होगी, उतनी ही पीड़ादायक होती है क्योंकि वह हरेक नहीं को हाँ में बदलना चाहता है। उसे गरमी लगी तो उसने ए सी का आविष्कार कर लिया। खाने – पीने को अपने हिसाब से ढाल लिया और न जाने क्या– क्या। लेकिन यह नहीं सोचा कि इनके कितने दुष्प्रभाव होंगे। अपनी जान की परवाह रही लेकिन पशुओं और वनस्पतियों के जान की कोई चिंता नहीं। परिवर्तन को समुचित रूप में स्वीकार करना सहज नहीं है। युग का संक्रमण काल यही है, जिसमें ना बड़े बच्चों की जीवन शैली अपना पाते हैं और ना बच्चे बड़ों की। पारिवारिक अलगाव और तकरार का यह मूल कारण है।

खुश रहने के लिए खुद को ईर्ष्या– द्वेष, घृणा आदि से परहेज करना इसलिए भी जरूरी है क्योंकि ये मन को दुर्गति की ओर ले जाते हैं। ये स्वास्थ्य के लिए भी हानिकारक हैं। स्वस्थ रहने वाला व्यक्ति योग को अपनी दिनचर्या में शामिल रखता है क्योंकि यह क्रोध और अन्य निषेधात्मक भावों से बचाता है। हमारे पास सुखद नींद, प्यार और हँसी के ठहाके हैं तो हम सबसे दौलतमंद लोगों में से हैं। इसके लिए आवश्यक है कि अपनी तुलना किसी से न करें। सबकी जीवन यात्रा अलग होती है। अपनी यात्रा को अपने अनुसार खुशगवार बनानी चाहिए। अपनी जिन्दगी के अहम फैसले लेने में सदा आगे रहें। निर्णय दूसरे के भले हों पर मंजूरी आपकी होनी चाहिए। आप जो कर रहे हैं, उसका दायित्व अगर नहीं लेंगे तो परिणाम भी मनमुताबिक नहीं होगा। हमेशा असंतुष्ट रहेंगे। हम जो जिन्दगी जी रहे हैं, जैसे जी रहे हैं,वह अपनी बनायी हुई है। इसे बदतर या बेहतर बनाना शत प्रतिशत हमारे हाथ में है। यकीनन फूलों की महक मन की कलुषता मिटा देती है, बारिश की बूँदें दिल के संताप हर लेती हैं और चिड़ियों की चहक मन को स्नेहिल ऊष्मा से भर देती है ,तो फिर इन्हें बचा कर और इनसे तारतम्य स्थापित कर हम अपनी ही जीवन शैली को रम्य और स्वास्थ्यवर्धक बना सकते हैं।

सद्भाव के मुक्तक

प्रो. डॉ. शरद नारायण खरे

प्राचार्य
शासकीय जेएमसी महिला महाविद्यालय
मंडला (म.प्र.)

सबसे हिल–मिलकर रहो, तभी बनेगी बात।
जब सब सद्भावी बनें, तब रोशन हो रात।
यही आज संदेश है, यही आज उद्घोष,
भारतवासी एक हों, तब मिलती सौगात।।

हिन्दू–मुस्लिम एक हैं, मानव सारे एक।
सबको बनना है यहाँ, मानुष चोखा,नेक।
पुलकित हो सौहार्द नित, नेह पले हर हाल,
सभी धर्म तो एक हैं, दिखते भले अनेक।।

अंधकार में रोशनी, बिखरेगी तब खूब।
उगे देश में एकता, की जब पावन दूब।
टूटन अरु दुर्भाव का, होता दुष्परिणाम,
पलती यदि नहिं एकता, सब कुछ जाता डूब।।

सद्भावी यह देश है, अमन–चैन का भाव।
सब कौमों में एकता, दिखता नेहिल ताव।
जब पलता सद्भाव तब, खुशियाँ करतीं राज,
खुशहाली रहती सदा, दिखता सार,प्रभाव।।

धर्म सभी तो एक हैं, मत करना तुम भेद।
वरना तो होगा अभी, एक्य भाव में छेद।
हो यदि कौमी एकता, गूँजे मंगलगान,
वरना होना तय 'शरद', बेहद सबको खेद।।

सूर्य नमस्कार (विस्तृत वर्णन)

सूर्य नमस्कार में 12 आसन होते हैं। इसे सुबह के समय करना बेहतर होता है। सूर्य नमस्कार के नियमित अभ्यास से शरीर में रक्त संचरण बेहतर होता है, स्वास्थ्य बना रहता है और शरीर रोगमुक्त रहता है। सूर्य नमस्कार से हृदय, यकृत, आँत, पेट, छाती, गला, पैर शरीर के सभी अंगो के लिए बहुत से हैं। सूर्य नमस्कार सिर से लेकर पैर तक शरीर के सभी अंगो को बहुत लाभान्वित करता है। यही कारण है कि सभी योग विशेषज्ञ इसके अभ्यास पर विशेष बल देते हैं।

पंडित श्री कैलाशनारायण
ज्योतिषाचार्य
उज्जैन, मध्य प्रदेश

सूर्य नमस्कार ऐसा योग है जिसको करने के बाद अगर आप कुछ और व्यायाम ना भी कर करें, तो भी काम चल जाएगा। सूर्य नमस्कार ऐसा योग है जो आपको शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ रखता है। पौराणिक ग्रंथो में भी सूर्य नमस्कार को सर्वप्रथम बताया गया है। ऐसा माना जाता है कि भगवान श्रीराम ने भी युद्ध में उतरने से पहले सूर्य नमस्कार किया था। कहते है यह रामायण काल युद्ध आरंभ हो चुका था और अनगिनत शत्रुओं के साथ श्रीराम की वानर सेना के भी कई महारथी शहीद हो गए थे। भगवान विष्णु के अवतार श्रीराम अपनी आंखों के सामने युद्ध का सारा दृश्य देख रहे थे। तभी उन्होंने सोचा कि यह वही घड़ी है जब वे स्वयं युद्ध के मैदान में उतरकर दुष्ट रावण का सर्वनाश करेंगे।

तभी ऋषि अगस्त्य द्वारा श्रीराम को युद्ध भूमि में जाने से पहले 'सूर्य नमस्कार' करने की सलाह दी गई। मान्यता है कि पौराणिक इतिहास में यह पहला सूर्य नमस्कार था, जिसे रामायण ग्रंथ के युद्ध कांड में भी शामिल किया गया है। सम्पूर्ण रूप से सूर्य नमस्कार करने के पश्चात ही श्रीराम दैत्य रावण का वध करने के लिए युद्ध भूमि में उतरे थे।

सूर्य नमस्कार द्वारा सूरज की वंदना और अभिवादन किया जाता है। सूर्य ऊर्जा का स्रोत माना जाता है।

भारत के प्राचीन ऋषियों के द्वारा ऐसा कहा जाता है कि शरीर के विभिन्न अंग विभिन्न देवताओं के द्वारा संचालित होते है। मणिपुर चक्र (नाभि के पीछे स्थित जो मानव शरीर का केंद्र भी है) सूर्य से संबंधित है। सूर्य नमस्कार के लगातार अभ्यास से मणिपुर चक्र विकसित होता है। जिससे व्यक्ति की रचनात्मकता और अन्तर्ज्ञानि बढ़ते हैं। यही कारण था कि प्राचीन ऋषियों ने सूर्य नमस्कार के अभ्यास के लिए इतना बल दिया।

सौर जाल (यह नाभि के पीछे स्थित होता है, जो मानव शरीर का केंद्रीय बिंदू होता है) को दूसरे दिमाग के नाम से भी जाना जाता है, जो कि सूर्य से संबंधित होता है। यही मुख्य कारण है कि प्राचीन समय के ऋषि–मुनि सूर्यनमस्कार करने की सलाह देते थे, क्योंकि इसका नियमित अभ्यास सौरजाल को बढ़ाता है, जो रचनात्मकता और सहज–ज्ञान युक्त क्षमताओं को बढ़ाने में सहायक होता है।

सूर्य नमस्कार के मंत्रो का उच्चारण कैसे करे ?

सूर्य नमस्कार के मंत्रो का उच्चारण करने का सिर्फ एक ही नियम है और वो है कृतज्ञ भाव के साथ मंत्रो का उच्चारण करना। हरेक मंत्र का एक विशेष अर्थ होता है परंतु उस मंत्र

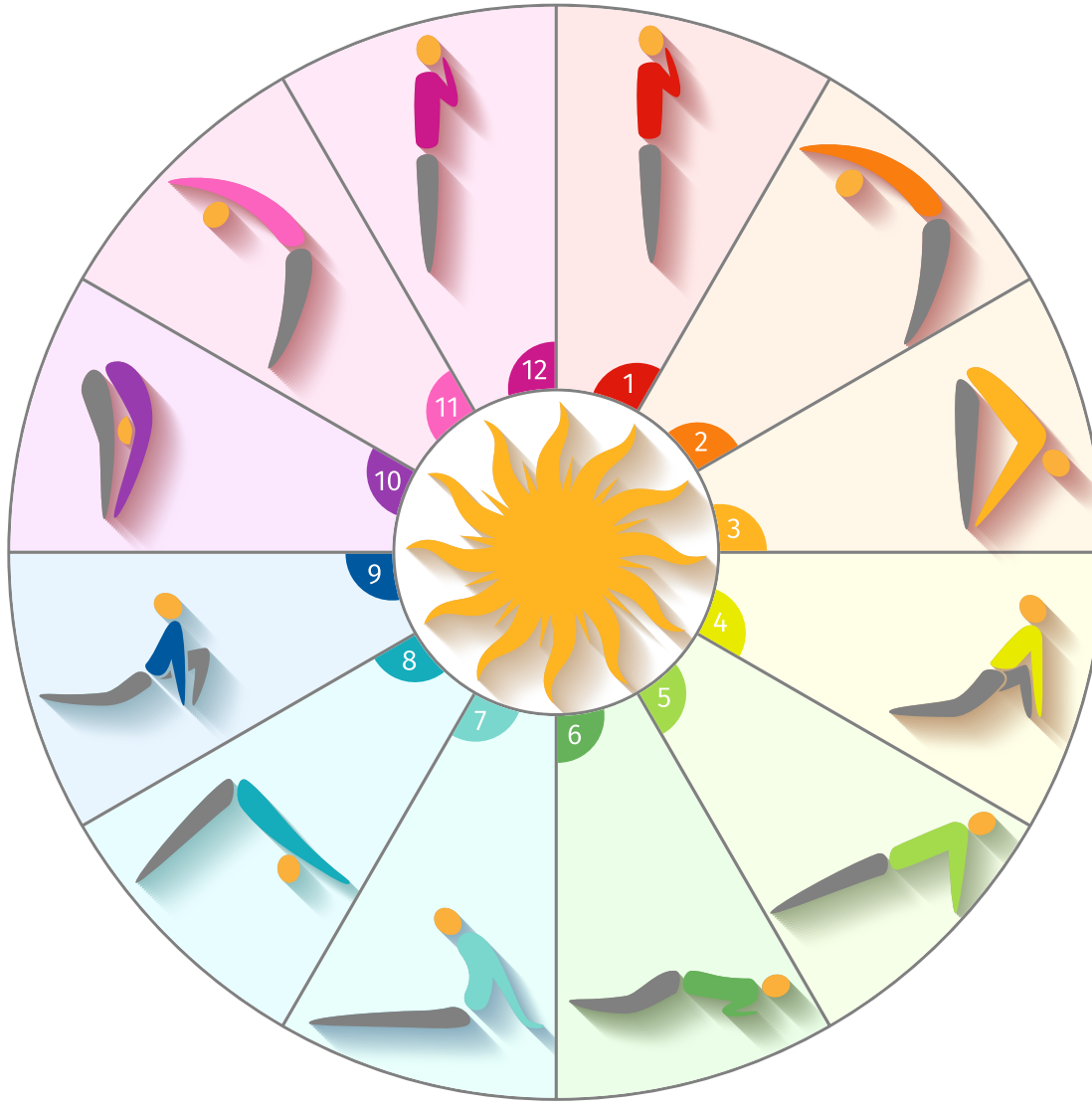

के अर्थ की गहराई में उतारना अति आव्यशक नही है।

जैसे की, "भानवे नमः" का अर्थ है "जो हमारे जीवन में प्रकाश लाता है"। जब आप इस मंत्र का उच्चारण करते हैं तो आप सूर्य के प्रति रौशनी व धरती पर जीवन के लिए कृतग्यता प्रकट करते हैं

सूर्य नमस्कार की प्रक्रिया के दौरान इन मंत्रों की सूर्य की स्तुति में वंदना की जाती है। यह मंत्र सूर्य नमस्कार के लाभों को और अधिक बढ़ा देते हैं। इनका शरीर और मन पर एक सूक्ष्म परंतु मर्मज्ञ प्रभाव पड़ता है। यह १२ मंत्र जो सूर्य की प्रशंसा में गाये जाते हैं इनका सूर्य नमस्कार करने कि प्रक्रिया पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

मंत्रो को सूर्य नमस्कार की प्रक्रिया में कैसे जोड़े?

आप सूर्य नमस्कार के मंत्रो का जिव्हा से उच्चारण कर सकते हैं अथवा मन में भी इन मंत्रो का आवाहन कर सकते हैं।

एक सूर्य नमस्कार के चरण के दो क्रम होते हैं– पहला दाएँ पैर के साथ किया जाता है और दूसरा बाएँ पैर के साथ किया जाता है आदर्शतः हमको कम से कम 12 सूर्य नमस्कार प्रतिदिन करने चाहिए परंतु आप जितना भी सहज तरीके से कर सकते हैं उतना ही कीजिए यदि आप 6 सूर्यनमस्कार कर रहे हो तो प्रत्येक नए क्रम में मंत्र का उच्चारण करें। पहला चरण प्रारम्भ करते हुए पहले मंत्र का उच्चारण करें, जब आप दोनों क्रम पूरे करलें तो दूसरा चरण प्रारम्भ करने से पहले दूसरे मंत्र का उच्चारण करें और आगे बढ़ते रहे। इस तरह से आप 12 सूर्य नमस्कार के साथ 12 मंत्रों का उच्चारण कर लेंगे।

यदि आप 12 से कम सूर्य नमस्कार करते हैं, जैसे कि 2 अथवा 4, तो आप प्रत्येक आसन के साथ हरेक मंत्र का उच्चारण कर सकते हैं। इस प्रकार से आप प्रत्येक आसन के साथ एक मंत्र का उच्चारण कर सकते हैं।

सूर्य नमस्कार मंत्र क्रम बद्ध

1. प्रणाम आसन : उच्चारण : मित्राय नमः

मुद्रा– दोनों हाथों को जोड़कर सीधे खड़े हों। नेत्र बंद करें। ध्यान 'आज्ञा चक्र' पर केंद्रित करके 'सूर्य भगवान' का आह्वान **'मित्राय नमः'** मंत्र के द्वारा करें।

अर्थ : सबके साथ मैत्रीभाव बनाए रखता है।

2. हस्तउत्थान आसन : उच्चारण: रवये नमः।

मुद्रा– श्वास भरते हुए दोनों हाथों को कानों से सटाते हुए

ऊपर की ओर तानें तथा भुजाओं और गर्दन को पीछे की ओर झुकाएं। ध्यान को गर्दन के पीछे 'विशुद्धि चक्र' पर केन्द्रित करें।

अर्थ : जो प्रकाशमान और सदा उज्जवलित है।

3. हस्तपाद आसन : उच्चारण: सूर्याय नम:।

मुद्रा– तीसरी स्थिति में श्वास को धीरे–धीरे बाहर निकालते हुए आगे की ओर झुकाएं। हाथ गर्दन के साथ, कानों से सटे हुए नीचे जाकर पैरों के दाएं–बाएं पृथ्वी का स्पर्श करें। घुटने सीधे रहें। माथा घुटनों का स्पर्श करता हुआ ध्यान नाभि के पीछे 'मणिपूरक चक्र' पर केन्द्रित करते हुए कुछ क्षण इसी स्थिति में रुकें। कमर एवं रीढ़ के दोष वाले साधक न करें।

अर्थ : अंधकार को मिटाने वाला व जो जीवन को गतिशील बनाता है।

4. अश्व संचालन आसन : उच्चारण: भानवे नम:।

मुद्रा– इसी स्थिति में श्वास को भरते हुए बाएं पैर को पीछे की ओर ले जाएं। छाती को खींचकर आगे की ओर तानें। गर्दन को अधिक पीछे की ओर झुकाएं। टांग तनी हुई सीधी पीछे की ओर खिंचाव और पैर का पंजा खड़ा हुआ। इस स्थिति में कुछ समय रुकें। ध्यान को 'स्वाधिष्ठान' अथवा 'विशुद्धि चक्र' पर ले जाएँ। मुखाकृति सामान्य रखें।

अर्थ : जो सदैव प्रकाशमान है।

5. दंडासन : उच्चारण: खगाय नम:।

मुद्रा– श्वास को धीरे–धीरे बाहर निष्कासित करते हुए दाएं पैर को भी पीछे ले जाएं। दोनों पैरों की एड़ियां परस्पर मिली हुई हों। पीछे की ओर शरीर को खिंचाव दें और एड़ियों को पृथ्वी पर मिलाने का प्रयास करें। नितम्बों को अधिक से अधिक ऊपर उठाएं। गर्दन को नीचे झुकाकर ठोड़ी को कण्ठकूप में लगाएं। ध्यान 'सहस्रार चक्र' पर केन्द्रित करने का अभ्यास करें।

अर्थ : वह जो सर्वव्यापी है और आकाश में घूमता रहता है।

6. अष्टांग नमस्कार : उच्चारण: पूष्णे नम:।

मुद्रा : श्वास भरते हुए शरीर को पृथ्वी के समानांतर, सीधा साष्टांग दण्डवत करें और पहले घुटने, छाती और माथा पृथ्वी पर लगा दें। नितम्बों को थोड़ा ऊपर उठा दें। श्वास छोड़ दें। ध्यान को 'अनाहत चक्र' पर टिका दें। श्वास की गति सामान्य करें।

अर्थ : वह जो पोषण करता है और जीवन में पूर्ति लाता है।

7. भुजंग आसन : उच्चारण: हिरण्यगर्भाय नम:।

मुद्रा : इस स्थिति में धीरे–धीरे श्वास को भरते हुए छाती को आगे की ओर खींचते हुए हाथों को सीधे कर दें। गर्दन को पीछे की ओर ले जाएं। घुटने पृथ्वी का स्पर्श करते हुए तथा पैरों के पंजे खड़े रहें। मूलाधार को खींचकर वहीं ध्यान को टिका दें।

अर्थ : जिसका स्वर्ण के भांति प्रतिभा/ रंग है।

सूर्यनमस्कार व श्वासोच्छवास

8. पर्वत आसन : उच्चारण: मरीचये नम:।

मुद्रा – श्वास को धीरे–धीरे बाहर निष्कासित करते हुए दाएं पैर को भी पीछे ले जाएं। दोनों पैरों की एड़ियां परस्पर मिली हुई हों। पीछे की ओर शरीर को खिंचाव दें और एड़ियों को पृथ्वी पर मिलाने का प्रयास करें। नितम्बों को अधिक से अधिक ऊपर उठाएं। गर्दन को नीचे झुकाकर ठोड़ी को कण्ठकूप में लगाएं। ध्यान 'सहस्रार चक्र' पर केन्द्रित करने का अभ्यास करें।

अर्थ : वह जो अनेक किरणों द्वारा प्रकाश देता है।

9. अश्वसंचालन आसन : उच्चारण : आदित्याय नम:।

मुद्रा– इसी स्थिति में श्वास को भरते हुए बाएं पैर को पीछे की ओर ले जाएं। छाती को खींचकर आगे की ओर तानें। गर्दन को अधिक पीछे की ओर झुकाएं। टांग तनी हुई सीधी पीछे की ओर खिंचाव और पैर का पंजा खड़ा हुआ। इस स्थिति में कुछ समय रुकें। ध्यान को 'स्वाधिष्ठान' अथवा 'विशुद्धि चक्र' पर ले जाएँ। मुखाकृति सामान्य रखें।

अर्थ : अदिति (जो पूरे ब्रम्हांड की माता है) का पुत्र।

10. हस्तपाद आसन : उच्चारण: सवित्रे नम:।

अर्थ : जो इस धरती पर जीवन के लिए जिम्मेदार है।

(10) तीसरी स्थिति में श्वास को धीरे–धीरे बाहर निकालते हुए आगे की ओर झुकाएं। हाथ गर्दन के साथ, कानों से सटे हुए नीचे जाकर पैरों के दाएं–बाएं पृथ्वी का स्पर्श करें। घुटने सीधे रहें। माथा घुटनों का स्पर्श करता हुआ ध्यान नाभि के पीछे 'मणिपूरक चक्र' पर केन्द्रित करते हुए कुछ क्षण इसी स्थिति में रुकें। कमर एवं रीढ़ के दोष वाले साधक न करें।

11. हस्तउत्थान आसन : उच्चारण : अर्काय नम:।

मुद्रा– श्वास भरते हुए दोनों हाथों को कानों से सटाते हुए ऊपर की ओर तानें तथा भुजाओं और गर्दन को पीछे की ओर झुकाएं। ध्यान को गर्दन के पीछे 'विशुद्धि चक्र' पर केन्द्रित करें।

अर्थ : जो प्रशंसा व महिमा के योग्य है।

12. ताड़ासन : उच्चारण : भास्कराय नम:।

मुद्रा– यह स्थिति – पहली स्थिति की भाँति रहेगी। सूर्य नमस्कार की उपरोक्त बारह स्थितियाँ हमारे शरीर को संपूर्ण अंगों की विकृतियों को दूर करके निरोग बना देती हैं। यह पूरी प्रक्रिया अत्यधिक लाभकारी है। इसके अभ्यासी के हाथों–पैरों के दर्द दूर होकर उनमें सबलता आ जाती है। गर्दन, फेफड़े तथा पसलियों की मांसपेशियां सशक्त हो जाती हैं, शरीर की फालतू चर्बी कम होकर शरीर हल्का–फुल्का हो जाता है।

अर्थ : जो ज्ञान व ब्रह्माण्ड के प्रकाश को प्रदान करने वाला है। इन 12 मंत्रो का उच्चारण आसनो के साथ करना बहुत लाभप्रद है।

सूर्य नमस्कार के द्वारा त्वचा रोग समाप्त हो जाते हैं अथवा इनके होने की संभावना समाप्त हो जाती है। इस अभ्यास से कब्ज आदि उदर रोग समाप्त हो जाते हैं और पाचनतंत्र की क्रियाशीलता में वृद्धि हो जाती है। इस अभ्यास के द्वारा हमारे शरीर की छोटी–बड़ी सभी नस–नाड़ियां क्रियाशील हो जाती हैं, इसलिए आलस्य, अतिनिद्रा आदि विकार दूर हो जाते हैं। सूर्य नमस्कार की तीसरी व पांचवीं स्थितियां सर्वाइकल एवं स्लिप डिस्क वाले रोगियों के लिए वर्जित हैं।

महात्मा बुद्ध महान धर्म सुधारक और बौद्ध धर्म के संस्थापक

स्वामी विवेकानंद ने महात्मा बुद्ध के बारे में कहा था कि चीन, जापान, लंका तथा कई अन्य देश महात्मा बुद्ध के उपदेशों का पालन करते हैं, किन्तु भारत उसे पृथ्वी पर भगवान के अवतार के रूप में पूजता है। सामान्यतः मैं उस व्यक्ति की आलोचना करने से दूर रहूँगा जिसे मैं भगवान के अवतार के रूप में पूजता हूँ।

डॉ. सन्तोष खन्ना

वरिष्ठ साहित्यकार एवं प्रधान संपादक : महिला विधि भारती त्रैमासिक पत्रिका
दिल्ली–110088

भागवत गीता में भगवान कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश देते हुए कहा कि–

यदा यदा ही धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानम सृज्याहम्।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम। धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।।

भगवान कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि "सज्जनों और साधुओं की रक्षा करने लिए और पृथ्वी पर से पाप को नष्ट करने के लिए तथा दुर्जनों और पापियों के विनाश करने के लिए और धर्म की स्थापना के लिए मैं हर युग में बार–बार अवतार लेता हूँ और समस्त पृथ्वी वासियों का कल्याण करता हूँ।"

लगभग हर भारतीय के विचार और संस्कार में यह भाव कूट कूट कर भरा है कि पाप का नाश करने के लिए भगवान अवतार लेते हैं। जब 563 ईस्वी पूर्व भारत में इक्ष्वाकु वंश में सनातनी हिंदु महाराज शुद्धोधन के यहां महात्मा बुद्ध का जन्म हुआ तो उस समय भी धर्म क्षेत्र में अनेक प्रकार की कुरीतियां घर कर चुकी थी। हिंदू धर्म के वैश्नव संप्रदाय में यह माना गया हैं कि महात्मा बुद्ध नौवें अवतार हैं जिन्होंने उस समय हिंदू धर्म में घुस आई विकृतियों के विरुद्ध विद्रोह कर विश्व के क्षितिज पर एक नये धर्म बुद्ध धर्म की संस्थापना करते हुए जिन सिद्धांतों का प्रतिपादन किया वह हिंदू धर्म के मौलिक सिद्धांत हैं। बुद्ध उस समय हिंदू धर्म में प्रचलित बलि देने का घोर विरोध करते हैं और अहिंसा को जरुरी बताते हैं। उस समय के राजा महाराजे भी बुद्ध धर्म की शरण में आ गये और बुद्ध धर्म को राजाश्रय खूब मिला कि यहां तक कि न केवल भारत में बल्कि विश्व के अनेक देशों में बुद्ध धर्म का प्रचार प्रसार किया गया और अनेक देशों ने बौद्ध धर्म को अपना लिया। काल के इतने अंतराल के बाद विश्व में अभी भी कई देशों में बौद्ध धर्म प्रचलन में है। महात्मा बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद ही इस धर्म को राजाश्रय मिलना आरम्भ हो गया। सम्राट आशोक महान के काल में इसे खूब राजाश्रय मिला। महाराज अशोक द्वारा लड़े गये कलिंग युद्ध में लाखों लोग मारे गये थे। इतने बड़े पैमाने पर हुई मार काट के बाद महात्मा बुद्ध की अहिंसा संबंधी शिक्षाओं ने जादू का –सा असर किया और सम्राट अशोक महात्मा बुद्ध के अनुयायी बन गये।

आइये, अब महात्मा बुद्ध के जीवन वृत्त के बारे में जानते हैं। उनकी माता का नाम महारानी महामाया था जो नेपाल के कोलीए वंश से थी। एक बार जब महारानी अपने मायके नेपाल जा रही थी तो रास्ते में उन्हें प्रसव पीड़ा प्रारंभ हुई और शाक्य गणराज्य की तत्कालीन राजधानी कपिलवस्तु के पास लुम्बिनी जो नेपाल में है वहां उन्होंने एक बालक को जन्म दिया जो बाद में चल कर महात्मा बुद्ध के नाम से सुप्रसिद्ध हुए। उनके जन्म के सात दिन बाद महारानी महामाया का देहांत हो गया। बालक का नाम सिद्धार्थ रखा गया और उनका पालन पोषण उनकी मौसी , जो महामाया की सगी बहिन और महाराज शुद्धोधन की दूसरी पत्नी रानी महाप्रजावती गौतमी थी ने किया, इसलिए सिद्धार्थ गौतम भी कहलाये।

सिद्धार्थ की शिक्षा दीक्षा उनके गुरु विश्वामित्र से हुई जिनसे उन्होंने न केवल वेद और उपनिषदों का अध्धयन किया बल्कि उनसे राजकाज और युद्ध विद्या भी सीखी।

कहा जाता है कि आरंभ से ही सिद्धार्थ का हृदय दया, करुणा और सभी के प्रति प्रेम से परिपूर्ण रहता था और वह किसी का भी दुःख नहीं देख सकते थे। कई विद्वान सिद्धार्थ के बारे में भविष्यवाणी कर चुके थे कि या तो सिद्धार्थ एक यशस्वी सम्राट बनेगा या फिर एक महान पवित्र आदमी बनेगा। पिता ने उनका सौलह वर्ष की आयु में राजकुमारी यशोधरा से विवाह कर दिया और उनके मन में उठने वाली वैराग्य की भावनाओं पर अंकुश लगाने के लिये तरह तरह के ऐश्वर्य और वैभव की व्यवस्था कर दी थी। इतना वैभव और ऐश्वर्य होने पर भी वह 29 वर्ष की आयु में अपनी सुंदर पत्नी यशोधरा, अपने दुधमुंहे बेटे राहुल तथा सम्पूर्ण साम्राज्य का परित्याग कर मानव हित में वनों को चले गए। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम का तो राज्याभिषेक होने वाला था और पिता के वचनों की रक्षा हित वह वनगमन कर गये किंतु सिद्धार्थ पर ऐसा कोई दायित्व नहीं आया था, वह भी मानव हित साम्राज्य त्याग कर तपस्या करने वन में चले गए। वर्षो की कठोर साधना के पश्चात् बोध गया (बिहार) में बोधि वृक्ष के नीचे उन्हें ज्ञान की प्राप्ति हुई और वे सिद्धार्थ गौतम से भगवान बुद्ध बन गए।

उन्होंने उत्तर प्रदेश के वर्तमान सारनाथ में पहली बार अपना उपदेश दिया और वहां उन्होंने पांच अनुयाई बनाये जो फिर बौद्ध धर्म का प्रचार प्रसार करने लगे। उन्होंने बताया कि संसार दुःखों का घर है। दुःख का कारण है तृष्णा अर्थात् इच्छायें। इच्छाओं पर अंकुश लगा सादा जीवन और शुद्ध विचार रख कर दुःख से मुक्ति पाई जा सकती है। उसके लिए उन्होने हर व्यक्ति को अष्टांग मार्ग पर चलने के दिशा निर्देश दिए।

उन्होंने दुःख, उसके कारण और निवारण के लिए अष्टांग मार्ग के साथ साथ अहिंसा पर बहुत जोर दिया है। उन्होंने यज्ञ और पशु–बलि की निंदा की। बुद्ध के उपदेशों का सार इस प्रकार है –

महात्मा बुद्ध ने सनातन धर्म की कुछ संकल्पनाओं का प्रचार किया, जैसे अग्निहोत्र तथा गायत्री मन्त्र

ध्यान तथा अन्तर्दृष्टि, मध्यमार्ग का अनुसरण, चार आर्य सत्य, अष्टांग मार्ग, अष्टांग मार्ग इस प्रकार है :–

1. सम्यक विचार, 2. सम्यक विश्वास, 3. सम्यक वाक्, 4. सम्यक कर्म, 5. सम्यक जीविका, 6. सम्यक प्रयास, 7. सम्यक स्मृति, 8. सम्यक समाधि।

यह सनातन सिद्धांत आज के इस उपभोक्ता वादी युग में बहुत प्रासंगिक हो उठे हैं। आज के उपभोक्तावादी युग में मानव की तृषणाओं का कोई ओर छोर नहीं है इसलिए क्या अमीर और क्या गरीब, क्या शिक्षित और क्या अशिक्षित अपनी अनियमित जीवन शैली के कारण प्रायः सभी अवसाद से घिरे रहते हैं। महात्मा बुद्ध ने दुःख निवारण के लिए जो अचूक रास्ता दिखाया वह यही था कि अपनी इच्छाओं पर नियंत्रण रखो, सदा सत्य बोलो, चोरी न करो, सत्य कर्म, सत्य विचार और सत्य विश्वास रखो। चूंकि उस समय समूचा ज्ञान संस्कृत भाषा में था और संभ्रांत वर्ग की बोलचाल की भाषा भी संस्कृत थी परंतु आम वर्ग पालि भाषा का प्रयोग करते थे। महात्मा बुद्ध ने अपने उपदेश पालि भाषा में दिये। उनके मुख्य उपदेश पालि भाषा में त्रिपिटक में संचित है जो है सुत्त पटिक, विनय पटिक और अभिधम्म पटिक।

स्वामी विवेकानंद ने महात्मा बुद्ध के बारे में कहा था कि चीन, जापान, लंका तथा कई अन्य देश महात्मा बुद्ध के उपदेशों का पालन करते हैं, किन्तु भारत उसे पृथ्वी पर भगवान के अवतार के रूप में पूजता है। सामान्यतः मैं उस व्यक्ति की आलोचना करने से दूर रहूँगा जिसे मैं भगवान के अवतार के रूप में पूजता हूँ। लेकिन हम सोचते हैं कि बुद्ध को उनके शिष्यों ने गहराई से नहीं समझा था। वैदिक धर्म बौद्ध धर्म आपस में बहुत निकट हैं। आधुनिक बौद्ध धर्म के विपरीत, भगवान बुद्ध का मौलिक रूप से कुछ भी नया नहीं। शाक्य मुनि विनाश करने नहीं आए थे, बल्कि पूरा करने के

लिए आए थे – यह तार्किक निष्कर्ष था, हिंदू समाज का तार्किक विकास ...।

हिन्दू धर्म बौद्ध धर्म के बिना नहीं रह सकता, ठीक वैसे ही जैसे हिन्दू धर्म के बिना बौद्ध धर्म। हमें यह समझने की जरूरत है कि इस विभाजन ने हमें क्या दिखाया। बौद्धों और वैदिक धर्म के अनुयायियों के बीच यह विभाजन भारत के पतन का कारण है और पिछले हजार वर्षों से भारत को विजेताओं द्वारा गुलाम बनाये जाने का कारण भी यही है।

डॉ. राधाकृष्णन का कहना था कि बुद्ध का लक्ष्य उपनिषदों के आदर्शवाद को उसके सर्वोत्तम रूप में आत्मसात कर उसे मानवता की दैनिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अनुकूल बनाना था। ऐतिहासिक रूप से, बौद्ध धर्म का अर्थ था, लोगों के बीच उपनिषदों की शिक्षाओं का प्रसार और इसमें उन्होंने जो हासिल किया वह आज भी कायम है। हम कह सकते हैं कि बौद्ध धर्म, सनातन धर्म की अपने मूल सिद्धान्तों में वापसी है।

आज देखा जा रहा है कि कुछ लोग बौद्ध धर्म को धर्म की दृष्टि से कम राजनीतिक दृष्टि से अधिक देखते हैं जोकि मानवता के हित में नहीं हैं जबकि इन दोनों धर्मों में इतनी अधिक समानताएं है कि उन्हें एक दूसरे से अलग कर देखना संभव नहीं है। कहीं कहीं तो महात्मा बुद्ध को शिव का अवतार भी माना जाता है।

महात्मा बुद्ध की जयंती बुद्ध पूर्णिमा को धूमधाम से मनाई जाती है।

गज़ल

विज्ञान व्रत
नोएडा

मुझको अपने पास बुला कर
तू भी अपने साथ रहा कर

अपनी ही तस्वीर बना कर
देख न पाया आँख उठा कर

बे– उन्वान रहेंगी वर्ना
तहरीरों पर नाम लिखा कर

सिर्फ ढलूँगा औजारों में
देखो तो मुझको पिघला कर

सूरज बन कर देख लिया ना
अब सूरज–सा रोज जला कर

हनुमान वन्दना

डॉ. अर्चना प्रकाश
स्वतंत्र लेखन
लखनऊ, उ.प्र.

अंजनि पुत्र महाबलशाली ,
राम भक्ति करै सेवक वाली।

राम दूत बनि लंका जावै,
सागर फाँदि सिया सुधि लावै।
लंकिनी सुरसहि माई कहै ,
तीक्चन बुद्धि विनम्र वाचली।
अंजनि पुत्र महाबलशाली,
रामभक्ति करें सेवक वाली।

रामलखन सिय हिरदे बसावै,
रामभक्त हनुमानहि भावै।
लाय संजीवनि लखन जियावै,
सूर्य चन्द्र भरें इनसे लाली।
अंजनि पुत्र महाबलशाली,
रामभक्ति करै सेवक वाली।

पल पल बदलें रूप नभचारी,
कुमति निवारै सुमति विचारी।
तुलसी के गुरु ज्ञान विधानी,
राम काज के सफल श्रीमाली।
अंजनि पुत्र महाबलशाली,
रामभक्ति करै सेवक वाली।

लाल देह सेंदुर आलेपन,
तीनि लोक करै तुमरा वन्दन।
अजर अमर पिशाच विनाशी,
अष्टसिद्धि नवनिधि के दानी।
अंजनि पुत्र महाबलशाली,
राम भक्ति करै सेवक वाली।

धर्म का मूल तत्व है 'मनुष्यता'

डॉ. हनुमान प्रसाद उत्तम

स्वतंत्र लेखन
योग. प्राकृतिक चिकित्सा विशेषज्ञ
(आयुर्वेद रत्न)
कानपुर नगर, उत्तर प्रदेश

मनुष्यता को वेदों में मनुष्य का आभूषण माना गया है। जिस मनुष्य के अंदर मनुष्यता नहीं है उसे दो पैरो वाला पशु कहा गया है। धर्म जीवन का अभिन्न अंग है। धर्म से रहित व्यक्ति को नास्तिक कहा गया है। सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझना ही मनुष्यता है। जो व्यक्ति केवल भौतिक संपन्नता के लिए अधर्म का सहारा लेता है, वह व्यक्ति अधम कोटि का माना गया है। पशु और मनुष्य में मूल अंतर इसी धर्म को अपनाने को लेकर ही है। अमुमन मत, संप्रदाय को ही धर्म कहा जाने लगा है। परंतु यह शास्त्रों की दृष्टि से सही नहीं है। मत या संप्रदाय व्यक्तियों द्वारा शुरु किए गए, जबकि धर्म मनुष्य के साथ सृष्टि के समय से ही है।

महाभारत में कहा गया है कि मनुष्य ही सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। यह बात इस ओर संकेत करती है कि हमें अपनी श्रेष्ठता बनाए रखने के लिए निज कर्तव्यों का पालन सम्यक रीति से करना चाहिए। मनुष्य में मनुष्यता का निर्माण करना ही धर्म का उद्देश्य है। धर्म का मूल मर्म है कर्म। जो कर्म (मन, वचन और कर्म) निज के प्रतिकूल हों उसका आचरण हमें दूसरों के साथ कभी नहीं करना चाहिए। श्रेष्ठ व्यवहार वही है जो निज को और दूसरों को भी अच्छा लगता हो। आत्म–प्रतिकूल आचरण मनुष्यता की मूल भावना के खिलाफ है। दुनिया के सभी धर्मग्रंथों की मूल भावना भी यही है।

आत्म–उन्नति (चेतना का विकास) के लिए किए गए सारे कार्य मनुष्यता की ही श्रेणी में आते हैं। हमारी चेतना का विस्तार तभी हो सकता है जब हम सद्कर्मो की राह पर बिना विकल्प के आगे बढ़ते रहें। सद्कर्मो का जो व्यक्ति विकल्प खोजता है वह पथभ्रष्ट होकर पशुता को प्राप्त हो जाता है। इसलिए धर्म के मूल तत्वों की खोज और मनुष्यता की उपासना करना जीवन का मूल उद्देश्य होना चाहिए। इसी से चारों पुरुषार्थो (धर्म–अर्थ–काम–मोक्ष) का मार्ग खुलता है। पाप–पुण्य की अवधारणा भी धर्म के मर्म में शामिल है। वेदों में कहा गया है, जो धर्म सम्मत है वह पुण्य और जो धर्म के विपरीत है वह पाप कर्म है। इसीलिए हमें मन, वचन व कर्म से हमेशा धर्मयुक्त कार्यो के करने की इच्छा रखनी चाहिए। शास्त्रों में कहा गया है, धर्म की बारीकियों को जानकर हमें धर्म के रास्ते को अपनाकर अपना और दूसरी की भलाई में अपनी शक्ति और समय लगाना चाहिए। यही मनुष्यता है और यही मनुष्य को करना चाहिए। धर्म को धारण करने वाला व्यक्ति यम–नियमों का पालन करता हुआ, मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। इसीलिए ऋषियों ने कहा है कि धर्म बिना जीवन की स्थिति प्राण बिना शरीर जैसी है। जो व्यक्ति सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझता है, वह किसी भी दुःख से परेशान नहीं होता है।

अनेक ऋषियों ने साफ तौर पर कहा है कि जो सुख–दुःख, लाभ–हानि, जीवन–मरण ओर यश –अपयश में धैर्य नहीं खोता, अहंकार नहीं करता तथा कुप्रवृत्तियों में नहीं फंसता है वही सच्चे अर्थो में धर्म का पालन करता है। अगर देखा जाए, तो जीवन जीने की सारी कला और शैलियां वेद शास्त्रों में साफ तौर पर वर्णित की गई है। इसीलिए वेद–शास्त्रों का पढ़ना–पढ़ना आया (उत्तम पुरुषों) का परम धर्म बताया गया है। इस तरह कहा जा सकता है कि वेदों, शास्त्रों के मुताबिक जीवन बिताने वाला मनुष्य ही धर्म के मूल तत्व मनुष्यता को धारण करता है, वह ईश्वर की भी उपासना करता है।

श्रेष्ठ सामाजिक संरचना का व्यवहार पक्ष :

राजयोग का महत्वपूर्ण योगदान

जीवन में नियम-संयम, जप-तप, ध्यान- धारणा, स्वाध्याय - सत्य, प्रेम - अहिंसा, राजयोग एवं मौन से जुड़ी साधना का प्रयोग एक साधक अपने साध्य तक पहुँचने हेतु करता है। स्वयं के वास्तविक स्वरुप की अनुभूति आत्मा को सम्पूर्ण बनाने के संदर्भ में होने से यह अहसास होता है कि दीर्घकाल के पुरुषार्थ के पश्चात अभी सम्पूर्णता शेष है तो वहां समर्पित हो जाना बेहतर विकल्प के रूप में दिखाई देता है। जीवन दर्शन के प्रति निष्ठा व्यक्ति को धर्म - कर्म के सिद्धांत एवं व्यवहार से संबद्ध कर देती है जिसमें स्वयं की सम्पूर्णता का पक्ष मुख्य आधार होता है। मानव जब स्वयं के वास्तविक स्वरुप की अनुभूति से आत्म दर्शन को जीवन के साक्षात्कार से अभिभूत पाता है तो वह अध्यात्म पुरुषार्थ की ओर गतिशील हो जाता है। आत्म उन्नति के शिखर को परमात्म दर्शन की धन्यता से स्वीकार करते हुए जब आत्मा राजयोग - मौन को अंगीकार कर लेती है तब स्वयं के सत्य स्वरुप की अनुभूति सुनिश्चित हो जाती है।

डॉ. मेधावी शुक्ला

गांधी एवं शांति अध्ययन विभाग
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
दिल्ली

उत्कृष्टता की स्मृत्ति से सम्पूर्णता की प्राप्ति : स्वयं के प्रति उच्च दृष्टि व्यक्ति को इस बात की अनुभूति कराती है कि आत्मा ने पुरुषार्थ से समझने, सीखने एवं अनुभव करने की आधारभूत गतिविधि को पूर्ण कर लिया है। जीवन में केवल उत्कृष्टता की स्मृत्ति से व्यक्ति स्वयं को इतनी ऊँची स्थित्ति में स्थापित कर लेता है जिससे वह सम्पूर्णता की प्राप्ति सहज ही उपलब्धि के रूप में अर्जित के सके। श्रेष्ठ सामाजिक संरचना का व्यवहार पक्ष व्यक्ति को सदा स्वयं की श्रेष्ठता को बनाए रखने के लिए उत्कृष्टता की स्थित्ति हेतु सचेत करता रहता है। जीव – जगत की आंतरिक अभिलाषा स्वयं को पूर्णता की प्राप्ति से संबद्ध रखती है जिसके लिए वह कई जन्मों से प्रयासरत रहते हुए सम्पूर्ण बन जाने के लिए त्याग, तपस्या एवं सेवा का अनुकरण भी करती है। व्यक्ति द्वारा आत्मा के स्वभावगत आचरण का सम्मान करना और उसके विकास के मूल स्वरूप हेतु प्रतिबद्धता व्यक्त करना उत्कृष्टता की स्मृत्ति से सम्पूर्णता की प्राप्ति का वृहद् प्रमाण होता है। जीवन के व्यापक परिदृश्य में जब स्वयं के उत्थान की स्थित्ति निर्मित होती है तब मनुष्य के समर्पित भाव का उल्लेख व्यवहार में परीलक्षित होने लगता है। यदि व्यक्ति के भीतर स्वयं को सम्पूर्ण बनाने की लगन है तो वह अपने लक्ष्य के प्रति समर्पण के जीवन मूल्य को अपनाते हुए पुरुषार्थ के प्रति निष्ठावान रहता है। जीवन का दार्शनिक बोध व्यक्ति को उमंग उत्साह की सद्प्रेरणा प्रदान करता है जिससे निर्धारित लक्षण धारण करके उर्ध्वगामी चिंतन की स्थित्ति से सम्पूर्णता को प्राप्त किया जा सकता है । स्वयं के द्वारा बुद्धि का समर्पण आत्मा के स्वमान की रक्षा करता है जिससे स्व– विकास के मार्ग को प्रशस्त करना आसान हो जाता है। आत्मिक समृद्धि के विभिन्न आयाम सूक्ष्म प्राप्ति को समर्पणता के संदर्भ में रेखांकित करते हैं जिन्हें चिन्तन की उच्चता से सदा गहरा लगाव होता है।

स्वयं के वास्तविक स्वरुप की अनुभूति : व्यक्ति अपने जीवन में श्रेष्ठ अवस्था का मालिक बनकर जीना चाहता है और इस गुणात्मकता के लिए स्वयं को परिष्कृत करने की ललक उसे सम्पूर्ण व्यक्तित्व के निर्माण हेतु प्रेरित करती है। जीवन की उत्कृष्टता को व्यवहार में लाने पर ज्ञात होता है कि स्वयं को गुण एवं शक्ति संपन्न बनाना आत्मा की पवित्र अवस्था से जुड़ा महत्वपूर्ण प्रसंग है। स्वयं के उत्कर्ष में गुणात्मकता का समावेश व्यक्तिगत परिष्कार का श्रेष्ठतम उदाहरण है जिसमें राजयोग का प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष योगदान होता है जीवन में आत्म स्थित्ति की उच्च अवस्था के द्वारा जब परमात्म सत्ता से संबंध स्थापित कर लिया जाता है तब आत्म स्वरुप की निरन्तरता सदा के लिए कायम हो जाती है । स्वयं का परिष्कार चेतना का वह श्रेष्ठ स्तर होता है जहां से व्यक्ति सम्पूर्णता की अनुभूति पूर्णरूपेण समर्पित भाव से करने लगता है और आत्मिक गुणवत्ता को परिपक्वत्ता से बनाए रखता है।

सामाजिक उज्ज्वलता का स्वरुप : मानव जीवन में सतोप्रधान व्यवस्था की उपस्थिति और उसका स्थायित्व उच्च कोटि की सामाजिक संरचना के अंतर्गत परिलक्षित होता है जिसमें मानवता से युक्त श्रेष्ठता अपने उज्जवल स्वरुप में विद्यमान रहती है । एक मनुष्य के द्वारा पवित्र कल्पनाओं का आभा मंडल स्वयं के उत्थान का कारक बन जाता है और धीरे – धीरे आस – पास के वातावरण को सुगन्धित कर देता है क्योंकि पवित्रता के प्रति गहन निष्ठा ने व्यक्ति से ऊँचा प्रयास करवाने के साथ आनंददायी उपलब्धि तक पहुँचने की प्रेरणा प्रदान कर दी है । सम्पूर्ण समाज की श्रेष्ठता का दायित्व उस समाज के प्रत्येक व्यक्ति पर होता है जो अपनी कर्म कहानी को स्वयं सजाने एवं संवारने के प्रति कर्तव्य बोध से भरपूर रहते हैं । बाह्य दृष्टि से विचार करने पर यह ज्ञात होता है कि ' श्रेष्ठ सामाजिक संरचना' केवल भाव एवं विचार पक्ष का स्वरुप है जिसे मानवीय कल्पना के उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है ।

इस धरती पर स्वर्ग और नर्क की व्यावहारिकता के लिए भला क्या स्थान हो सकता है क्योंकि बड़े बुजुर्गों की लोक व्यापी गाथा में स्वयं के भूतकाल की आस्था तथा वर्तमान के प्रति भयानक असंतोष जिसे उन्होंने नर्क की संज्ञा से निरुपित कर दिया तथा भविष्य में मृत्यु उपरांत स्वर्ग प्राप्त होने की विश्वसनीय स्थितियों पर अविश्वसनीय बयान युवा पीढ़ी के लिए डरावने सपने की भांति प्रतीत होती है ।

स्वयं को जानने एवं मानने के पश्चात् आत्मा के बोध की स्थितियां मानव जाति को यह बताने में सक्षम हो जाती हैं कि इस लोक एवं परलोक की कहानी का राज क्या है क्योंकि मनुष्य द्वारा अपने जीवन की उत्पति के मूल कारणों पर खोज पूर्ण हो जाती है तथा वह आत्मा के अस्तित्व और स्थायित्व को स्वीकार कर लेता है । जीवन के नियमन – संयमन के प्रति निष्ठापूर्ण व्यवहार ने आज भौगोलिक सीमाओं से परे जाकर स्व – कल्याण से सर्व आत्माओं के कल्याण के अनेकानेक व्यावहारिक प्रमाण प्रदान करने में महारथ हासिल कर ली है जिससे 'श्रेष्ठ सामाजिक संरचना' की यथार्थता को स्वीकार करना स्वयं सिद्ध स्वरुप में सहज हो जाता है ।

मानवीय मूल्यों से युक्त जीवन – शैली : संवेदनशील व्यवहार के प्रति 'मानवीय मूल्यगत निष्ठा' का गहरा प्रभाव होता है जो मनुष्य को व्यक्तिगत जीवन के आचरण से प्राप्त होता है क्योंकि अन्तः करण से उपजे जीवन मूल्य श्रेष्ठ जीवन शैली के जीवंत प्रमाण होते हैं । व्यक्ति, परिवार और समाज की स्थितियों में श्रेष्ठ सामाजिक संरचना का निर्माण होना संस्कारगत व्यवस्था का परिणाम होता है जो मनुष्य को उसकी मनुष्यता बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जीवन की गतिशील प्रक्रिया में सम्पूर्ण आदर्शवादी व्यवहार की कल्पना अत्यंत सुखद प्रतीत होती है लेकिन एक दूसरे व्यक्तियों को सदा सुख पहुँचाने की यथार्थता व्यावहारिकता की कसौटी पर खरी उतरती हुई अनुभव नहीं होती है। सामान्य जीवन में व्यक्ति स्वयं की अनंत कामनाओं को पूर्ण करता है परन्तु वह इस कार्य में सफल नहीं हो पाने के कारण केवल निजी जीवन की आवश्यकता और कुछ इच्छाओं की पूर्ति होने पर स्वयं को संतुष्ट मान लेता है तथा लोभ के परिदृश्य में जाकर भयानक दुःख से बचने के उपाय वह खोजता रहता है । मानव जीवन का मानसिक द्वंद कई बार उसे बताता है कि जिन भौतिक इच्छाओं के मध्य पूर्णता एवं अपूर्णता का बोध स्वयं के सुख एवं दुःख का कारक बना हुआ है यही क्रोध पर नियंत्रण स्थापित करने नहीं देता है।

एक ओर मनुष्य स्वयं के धर्म – कर्म को ठीक करते – करते लोभ एवं मोह जैसे अति सूक्ष्म मनोविकार से मुक्त होने के प्रयास करता रहता है वहीं अहंकार जैसे अचानक प्रकट हो जाने में सिद्धहस्त भयानक मनोरोग व्यक्ति को इर्ष्या– द्वेष से घेर लेते हैं जो व्यक्ति को आलस्य एवं अलबेलेपन की मृत्युशय्या पर धकेल देने में निपुण होते हैं । इस सत्य की जानकारी व्यक्ति को प्रायः रहती है जिसमें श्रेष्ठ सामाजिक संरचना में मानवीय मूल्यों से युक्त जीवन– शैली की बात शामिल होती है तभी तो व्यक्ति धर्म के मर्म को समझने के अपने प्रयास में निरंतर संलग्न रहता है ।

लौकिक जीवन की सफलता में भौतिक संसार के दबाव को

दीर्घ काल तक अपनी आत्मा पर लेकर चलना और उससे स्वयं की संतुष्टता की बाट जोहना किसी मनुष्य के संवेदनशील कर्म को रेखांकित करता है। धर्म के प्रति एक गहरी निष्ठा क्या आदि काल से ही भय एवं प्रेम के कारण कर्म को श्रेष्ठ बनाने के लिए कार्य करती है? अथवा एक मनुष्य होने के कारण मनुष्यता का धर्म सर्व को सुख पहुँचाने से जुड़ा होता है इसलिए श्रेष्ठ सामाजिक संरचना के निर्माण में मानवीय मूल्यों से युक्त जीवन– शैली की उपादेयता बढ़ जाती है।

सामाजिक श्रेष्ठता का व्यवहार पक्ष : व्यक्तिगत जीवन से लेकर सामाजिक जीवन के धवल स्वरुप का मूल्यांकन मनः स्थिति में प्रायः मनुष्य के धर्म – कर्म को आपसी सुख : दुःख से सम्बंधित बन्धनों की ओर ले जाता है। जीवन का वृहद् पक्ष मानवता को धर्म के उस मर्म तक पहुँचाने का कार्य करता है जहाँ से जीवन की कठोरता का अंत हो जाता है और व्यक्तिगत जीवन में संबंधो की सरिता प्रवाहित होने लगती है। इस मनुष्य जीवन का सुखदायी पक्ष उस अवस्था से आरम्भ हो जाता है जहाँ से व्यक्ति आध्यात्मिक पुरुषार्थ करने लगता है क्योंकि इस प्रयास में 'आत्मा का अध्ययन' किया जाता है जो देह में रहते हुए इससे मुक्त रहने के अभ्यास से स्वमेव जुड़ जाता है। स्वयं के जीवन में अलौकिकता का समावेश मनुष्यता का परम सौभाग्यशाली स्वरुप है क्योंकि यही वह अवस्था है जहाँ से सामाजिक जीवन की श्रेष्ठता का व्यवहार पक्ष उजागर होता है जो व्यक्ति के अभौतिक जगत को प्रमाणित करता है । जब प्राणी मात्र के भीतर अलौकिक जन्म की भासना स्थायी तौर पर स्वीकार कर ली जाती है तब 'मन – बुद्धि का संतुलित स्वरुप कार्य करने लगता है और व्यक्ति सर्व के प्रति अहिंसात्मक दृष्टीकोंण को अपनाने की स्थिति में आ जाता है। जब धर्म, ' मानव बोध ' का स्पष्टीकरण कराता है तब अध्यात्म की ओर मनुष्य अग्रसर हो जाता है और आत्मिक सम्बन्धों की संरचना से स्वयं को जोड़कर जीवन के उत्थान की दिशा में अग्रसर हो जाता है। मानवीय 'परिष्कार' का यथार्थ राजयोग को उन स्थितियों में स्वीकार करता है जबकि उसके द्वारा ' धर्म – कर्म ' को अधिकतम स्तर पर स्वयं के कल्याण हेतु उपयोग करना होता है ।

'आध्यात्मिक– पुरुषार्थ' के द्वारा आत्मा की अनुभूतियों से स्वयं की स्मृति एवं स्थिति को ऊंचाई पर पहुँचाने के उच्चतम प्रयोग व्यावहारिक जीवन में किया जाना आवश्यक होता है ताकि 'श्रेष्ठ सामाजिक संरचना' में भागीदारी का स्थायित्व प्राप्त हो सके। सतोप्रधान व्यवस्था का अंग बन जाना जगत के मनुष्यों का वह पुरुषार्थ है जिसे व्यक्ति अंततः 'मोक्ष' की प्राप्ति के लिए स्वयं को सम्पूर्ण समर्पण के रूप में अर्पित कर देता है । मनुष्य की व्यक्तिगत मान्यता जन्म – मरण के चक्र से मुक्त होकर भगवत प्राप्ति होती है क्योंकि स्वयं की शक्ति का आत्म पक्ष व्यक्ति को कई बार जन्म लेकर कर्मो की गुह्य गति से सुख : दुःख की प्राप्ति करना सामान्यत : वह नहीं चाहता है । आध्यात्मिक जगत का अति सबल अर्थात् श्रेष्ठ भाव राजयोग है जिसमें आत्मा का संबंध परमात्मा से जोड़कर आत्मा दिव्य गुणों ,शक्तियों एवं खजानों से भर जाती है । राजयोग आत्मा की वह स्थिति है जिसमें पारलौकिक तत्व के बोध के साथ पराभौतिक रूप के सूक्ष्म स्वरुप का श्रेष्ठतम आभास होता है जो आत्मा को परमात्म– अनुभूतियों की ओर ले जाता है जहाँ से संस्कारगत परिवर्तन की अवस्था का भाग्योदय होता है जो अंततः आत्मा को 'श्रेष्ठ सामाजिक संरचना' के योगदान का अधिकारी बना देता है ।

नारी सम्मान

डॉ. विद्यासागर मिश्र 'सागर'
प्रधानाचार्य (से. नि.)
लखनऊ

एक से हैं एक नारियों ने यहां जन्म लिया,
जिन्होंने सदैव देशहित किया काम है।
शिक्षा की जलाई ज्योति थी सावित्री फुले जी ने,
सारे जग में सावित्री जी का बड़ा नाम है।
खूब झेला अत्याचार,कष्ट भी सहा अपार,
फिर भी शिक्षा प्रसार किया अविराम है।
देश व समाज हित लड़ती रही सदैव,
बार बार करूं ऐसी नारी को प्रणाम है।।

भारतीय बेटियों में भरा साहस अदम्य,
बैरियों को देख ललकारती हैं बेटियां।
रिपुदल देखकर भय कभी खाती नहीं,
युद्धभूमि शत्रु को संघारती हैं बेटियां।
सरहद पर रखती निगाह चारों ओर,
भारती के भाग्य को संवारती है बेटियां।
वक्त पर रक्त को चढ़ाती मातृ भूमि पर,
कर्ज मातृभूमि का उतारती हैं बेटियां।।

अनुसुइया, सीता,गायत्री व सावित्री ,
जैसी नारियों का यहां पर बड़ा मान है।
झलकारी, उदा देवी और रानी चेनम्मा की,
वीरता का हो रहा है जग में बखान है।
नायडू व जीजाबाई, पन्ना धाय, मीराबाई,
देवियों का होता यहां पर गुणगान है।
रानी पद्मिनी के जौहर की बात है निराली,
इन्ही नारियों से बना भारत महान है।।

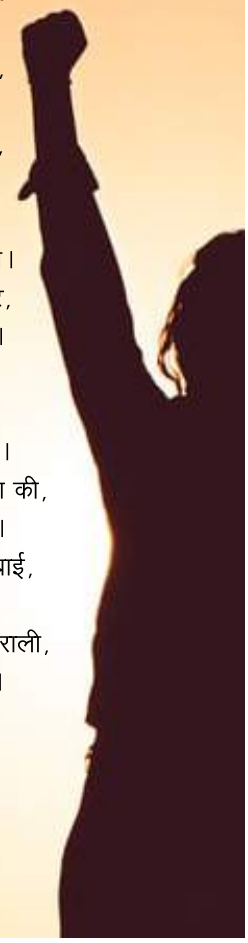

आत्मग्लानि आत्मविश्वास का दुश्मन

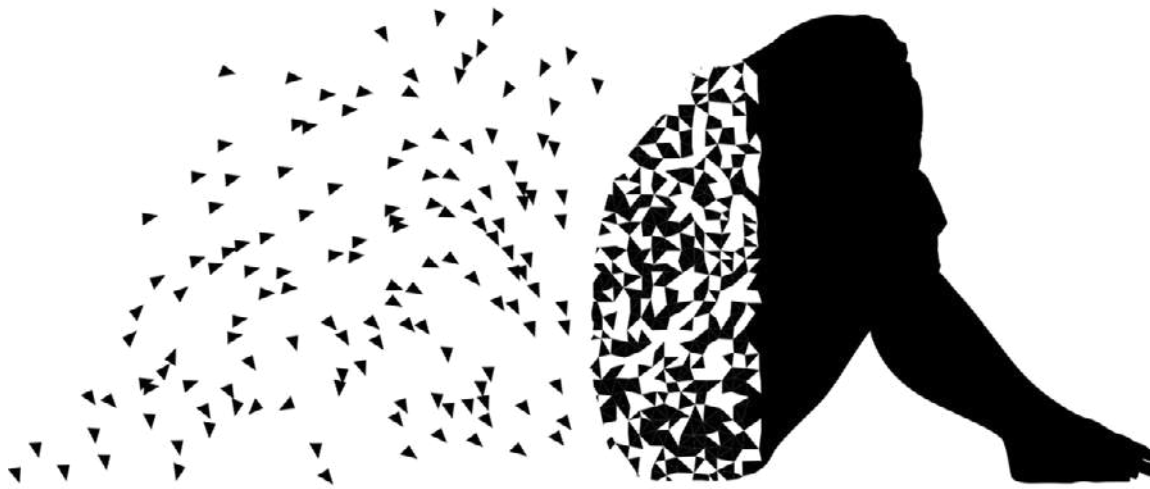

सुजाता प्रसाद

लेखिका,
शिक्षिका सनराइज एकेडमी
मोटिवेशनल ओरेटर
नई दिल्ली

ग्लानि का भाव पछ्तावे के साथ आता है। जब कोई इंसान अपनी गलती के कारण कुंठित महसूस करता है, परंतु प्रत्यक्ष रूप से किसी के सामने व्यक्त नहीं कर पाता है, उस स्थिति को अपराधबोध कहते हैं। अगर आप तनाव, क्रोध, डर या किसी भी तरह के नकारात्मक भाव को महसूस करते हैं, तो इसका बुनियादी कारण बस एक ही है आप अपने अंतरतम से अब तक अनजान हैं। अगर आप आत्मग्लानि के शिकार हैं तो आत्मविश्वास खोने का भी खतरा बना रहता है।

अपने गिल्ट की भावना या अपराध बोध को अपने ऊपर कभी हावी न होने दें। अनजाने में भी अगर ऐसा हो गया है तो तुरंत उस घेरे से बाहर निकलने की कोशिश करें। ग्लानि भाव ऐसा भाव है जो अपना असर सायलेंट किलर की तरह दिखाता है जिसका पता हमें तब चलता है जब बहुत देर हो चुकी होती है। कहने का तात्पर्य यह है कि स्वास्थ्य वह अमूल्य निधि है, जब तक हम इसे खो नहीं देते, तब तक हमें इसके मूल्य का सही अंदाजा नहीं होता। इसलिए हमें यह समझने की जरूरत है कि यदि हर कोई आपसे खुश है, तो ये निश्चित है कि आपने जीवन में बहुत से समझौते किये होंगे। अगर आप सबसे खुश हैं, तो निश्चित ही आपने लोगों की गलतियों को नजरअंदाज किया होगा।

दरअसल ग्लानि में अक्सर हम बैर कर बैठते हैं। कभी खुद से तो कभी उस व्यक्ति से जिसका सीधा संबंध उस घटना से होता है। हमें यह समझना चाहिए कि गलतियां हर किसी से होती है, इस सच को स्वीकार कर उसे सुधारने की कोशिश होनी चाहिए। हमेशा उस घटना को याद करते हुए कथित व्यक्ति विशेष को दोषी ठहराते ठहराते हम कब उस घटना के लिए स्वयं को भी दोषी मानने लगते हैं, हमें पता ही नहीं चलता। यह कहते हुए कि अगर मैं ऐसा नहीं करता या करती तो आज मेरे साथ ऐसा नहीं होता। कौन मुझसे कैसे कुछ कह पाता?

आदि आदि। धीरे धीरे यह भावना इतना घर कर बैठती है कि हम अपने घोर शुभचिंतकों के प्रति भी सशंकित होने लगते हैं। इतना ही नहीं अपनी कपोल कल्पना के आधार पर उन्हें भी अपना हितैषी मानने से इंकार कर देते हैं। इसका बुरा असर अप्रत्यक्ष रूप से हमारे स्वास्थ्य पर भी पड़ने लगता है। हमें यह जान लेना चाहिए कि किसी चीज को लेकर कोई खास राय बना लेना और अपने अंदर नाराजगी पालना, ये बीमारी या चोट से भी ज्यादा पीड़ा पहुंचाती है हमें। इसलिए हमें यह समझना चाहिए कि सबकी अपनी राय होती है। हमें अपना सर्वश्रेष्ठ देते रहना चाहिए, फिर देखना लोगों की राय भी बदलती जाएगी। मायूसी को एक डिबिया में बंद कर हवा में उछाल देने वाले ही अपने अगले काम पर फोकस कर पाते हैं और अपने बेहतरीन प्रदर्शन और अच्छे परिणाम से दुनिया को चौंका देते हैं। और जब जब ऐसा होता है, आपके बारे में उन्हीं लोगों की राय बदलते देर नहीं लगती है।

अपने साथ हुए धोखे के बारे में सोच सोच कर हम अपनी सोच को ही दूषित कर लेते हैं। और बार बार अपने कोरे विश्वास को पुख्ता करते रहते हैं, और मन ही मन खुद को कोसते हैं कि ऐसा मेरे साथ कैसे हो गया? यह बात सच है कि हम वास्तविकता से अपनी आंखे मूंद सकते हैं, मगर यादों से नहीं। पर किसी की गलती पता चलते हुए भी माफ कर देना उसको उसकी सेल्फ रेस्पेक्ट बचाने का मौका देना होता है और ऐसा करना आदर्श महानता का प्रतीक होता है। किसी ने कितना सही कहा है कि 'त्याग दो अपने बीते दुखद कल को क्योंकि उस का प्रभाव आने वाले कल को दूषित कर जाएगा।'

अगर हम इसे ऐसे कहते हुए इग्नोर करते रहें कि कमजोर लोग बदला लेते हैं, मजबूत लोग माफ कर देते हैं और अक्लमंद लोग नजरअंदाज कर देते हैं। निःसंदेह ऐसा करके आप अपने डगमगाते आत्मविश्वास को स्थिरता दे पाएंगे। हमें अपनी गलतियों से यह भी सीख लेना चाहिए कि अगर किसी ने एक बार आपका समय बर्बाद किया, तो वो है उसकी गलती परंतु किसी ने दूसरी बार आपका समय बर्बाद किया, तो वो है, आपकी गलती। क्या यह कहना भी उचित नहीं होगा कि जब आप किसी अन्य व्यक्ति को धोखा देते हैं तो आप अपने आपको भी धोखा देते हैं। याद रखिए ऐसे बहुत सारे रास्ते हैं अपने अपराध बोध से मुक्त होने के।

तो क्यों नहीं उन बातों को भूल जाना चाहिए जो हमें उदास कर देती हैं और उन पलों को याद रखना चाहिए जिनसे हमें खुशी मिलती है। इसलिए आइए जो बुरा वक्त गुजर गया उसकी याद मिटाने की कोशिश करे और जो समय आने वाला है उसे खुशनुमा बनाने में लग जाएं।

किसी शायर ने कितना सच कहा है कि
खुद चराग बन के जल वक्त के अंधेरे में
भीख के उजालों से रौशनी नहीं होती।

भूदेवी को बचा लो

डॉ. निशा नंदिनी भारतीय
तिनसुकिया, असम

रे मानव ! हो सके तो
इस पृथ्वी को बचा लो।
इसके गुणों को पहचानो
कण–कण को निहारो।

पंच तत्वों से निर्मित काया
सांसों में तेरा भाव समाया।
अन्न–जल तू सबको देती
भेदभाव तनिक ना करती
सहनशक्ति की तू देवी
सरलता–धैर्य धारण करती।

जड़–चेतन सबको अपनाती
खुशियों से झोली भर जाती।
मात–पिता दोनों का रूप
तेरा आंचल तेरी धूप।
हौंसला तेरा हुआ ना कम
पृथ्वी माँ शत–शत नमन।

लज्जा हीन बेहाल होकर
लालच घट को धारण कर।
निर्वस्त्र करे मानव तुझको
अंग–अंग को काट कर।
तेरी चीख–पुकार सुने ना
अंध गलियों में दौड़ रहा।

हवस का शिकार होकर
घर–द्वार अपने भर रहा।
अंत तेरा क्या होगा
मूर्ख मानव ! तू ना जाने।
यह बचेगी तू बचेगा
एहसानों इसके दबेगा।

अंतर्मन का आनंद

डॉ. अजय शुक्ला

गोल्ड मेडलिस्ट इंटरनेशनल ह्यूमन राइट्स
मिलेनियम अवार्ड
डायरेक्टर, स्प्रीचुअल रिसर्च
स्टडी एंड एजुकेशनल ट्रेनिंग सेंटर
देवास, मध्य प्रदेश

संवेदनशील मनोभाव : जीवन की गतिशीलता को स्वीकार करते हुए सदैव इस स्थिति की तत्परता बरतना आवश्यक हो जाता है, जिसके अन्तर्गत् भाव–जगत् से सहयोग प्राप्त करने के मनोभाव जुड़े हुए होते हैं। अन्तर्मन का सात्विक परिदृश्य चेतना और चिन्तन के प्रारूप को समझने का प्रयास तो करता है परन्तु अपनी उपस्थिति को प्रत्येक परिस्थिति में निर्णायक भूमिका के लिए तैयार नहीं कर पाता है। प्रकृति की सजीवता के मध्य स्वयं को स्थापित करने के साथ गुणात्मक स्थितियों के लिए आन्तरिक संघर्ष और उसमें सफल होने की उत्कण्ठा इस बात के लिए निरन्तर प्रेरणा प्रदान करते हैं जिसमें भावजगत् से अपेक्षित सहयोग की अभिलाषा किसी न किसी स्वरूप में अन्तःकरण को उद्धेलित करती रहती है। व्यक्ति के जीवन का भावनात्मक पक्ष अत्यधिक निर्मलता के साथ मुखरित होना चाहता है लेकिन विशुद्ध स्वरूप में उसकी उपयोगिता अन्तिम स्थिति तक बनी रहे उससे पूर्व ही स्वार्थपूर्ण मनोवृत्तियाँ अखण्डित भाव को खण्डित कर पुनर्विचार के लिए बाध्य कर दिया करती हैं। व्यावहारिक स्तर पर संवेदनशील मनःस्थिति के द्वारा जितने भी प्रयास किये जाते हैं उसमें इस बात की गुँजाईश होती है कि परिणाम तक पहुँचने के लिए जिन अवस्थाओं से व्यक्ति को गुजरना पड़ता है उसमें पश्चाताप की स्थितियाँ कई बार निर्मित हो जाया करती हैं। स्वयं की संवेदनाओं के प्रति अधिकतम् सतर्कता कहीं न कहीं व्यक्तिगत् जीवन के मूलभूत मनोभाव को अभिव्यक्त करने में सक्षम सिद्ध हो जाया करती हैं जिसमें अन्तर्मन के आनंद का वृहद स्वरूप समाहित रहता है। मानवीय व्यवहार से सम्बद्ध स्थितियों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण संवेदनशील पक्षों को जब सहजता से प्रस्तुत करता है तब सम्पूर्णता की अनुभूति प्राप्त करना सरल हो जाता है।

व्यक्तिगत् जीवन के संदर्भ को निष्पक्ष योगदान के लिए समर्पित करने पर किन्हीं प्रसंगों में यदि संवेदनाओं की प्रासंगिकता को स्वीकार नहीं किया जाता तब विरोधाभासी परिस्थितियों का उत्पन्न होना स्वाभाविक हो जाता है। संवेदना के स्तर पर विवेकपूर्ण विचार की उपस्थिति कभी भी गौण नहीं होती बल्कि कल्याणकारी स्वरूप में अपनी उपलब्धता को सार्थकता में परिवर्तित करने का प्रभावी प्रयास करती है जिससे आत्मिक आभास की व्यावहारिकता को मानवता के उत्कर्ष हेतु अक्षुण्य बनाये रखा जा सके। ज्ञान और समझ के

आधार से कई बार ऐसा प्रतीत होता है कि विभिन्न विरोधाभासी परिवेश में कोई न कोई जीवन का यथार्थवादी प्रसंग हमारे लिए उदाहरण बनकर ठोस उपाय के रूप में मदद्गार बन जाएगा लेकिन इसकी सुनिश्चितता तभी संभव हो पाती है जब भावजगत् से अपेक्षित सहयोग उस निश्चित समय पर प्राप्त हो जाए। जीवन में उर्ध्वगामी अवस्था की ओर अग्रसर होते हुए सहजता से सम्पूर्णता की अनुभूति का दार्शनिक पक्ष अत्यधिक उजला होता है जिसे प्राप्त करने के लिए भावजगत् को समृद्धशाली बनाने का भागीरथ पुरूषार्थ आवश्यक है तभी अन्तर्मन के आनंद से व्यावहारिक प्रेरणा का प्रस्फुटन स्वयं के साथ–साथ सर्व को आलोकित कर सकेगा। संवेदनशील मनोभाव की मानवीय अभिव्यक्ति चेतन, अवचेतन और अचेतन मन के मध्य एक सकारात्मक सहसम्बन्ध स्थापित कर देती है जिससे भावनात्मक स्थितियों की विशुद्धता अखण्ड स्वरूप में अनवरत कार्य करती रहती है।

निष्पक्ष योगदान : स्वयं के समर्पण का स्वरूप जब व्यक्ति, घटना, विचार एवं व्यवस्था के संदर्भ में घटित होने की स्थितियों से निर्मित होता है तब भावजगत् की वास्तविकता पूर्णतया बोध के स्तर पर कार्यरत रहती है। विभिन्न प्रसंगों में जिन संवेदनाओं के साथ गतिशीलता की प्रासंगिकता प्रकट होती है, लगभग उसी स्वरूप में उसे स्वीकार किया जाना चाहिए अन्यथा विद्रोह अथवा बदले की भावना उत्पन्न हो जाया करती है। कई बार भावजगत् अपनी अभिव्यक्ति को व्यावहारिक रूप में क्रियान्वयन हेतु अवसर प्रदान करता हैं परन्तु एकाग्र स्थिति के अभाव के कारण वाँक्षित सफलता प्राप्त नहीं हो पाती है। मानवीय भावनाओं से सम्बद्ध अपेक्षाएँ अपने आरम्भिक काल में अनिवार्य आवश्यकताओं का अध्ययन करके गतिशील हुआ करती हैं जिसे स्वार्थपूर्ण मनोवृत्तियों के दबाव का यदाकदा दुःख भी सहन करना पड़ता है। अन्तर्मन की आवाज के प्रति उदासीनता की सामान्य आदत एवं स्वभाव के कारण प्रायः भावजगत् के निष्पक्ष योगदान को अनुभव के स्तर पर स्वयं के कल्याण हेतु स्वीकार कर लेना वर्तमान संदर्भो में कठिन होता जा रहा है। भावजगत् की भूमिका के ऊपर कोई प्रश्न चिन्ह नहीं है बल्कि सर्वाधिक चिंता इस बात की है कि आखिर किन परिस्थितियों ने भावनात्मक पृष्ठभूमि से मानवजाति को अलग कर दिया है। व्यक्तिगत् जीवन की शुचिता आराध्य के प्रति भक्ति–भाव की उत्पत्ति को किसी भी प्रकार से फलीभूत होते देखना चाहती है लेकिन दैनिक गतिविधियों में समाहित हो चुकी कर्मकाण्ड की व्यावहारिकता इतनी दबावयुक्त होती है कि श्रद्धा एवं विश्वास जैसे मूलभूत शब्दों के भाव वास्तविकता से कहीं दूर चले जाते हैं। स्वयं की सोच और समझ को जब सर्वश्रेष्ठ मानकर सहर्ष स्वीकार कर लिया जाता है तब यह तय करना मुश्किल हो जाता है कि निजी जीवन के उत्थान हेतु भावजगत् का स्वरूप किस सीमा तक अपना योगदान निरूपित कर पाने में सफलता प्राप्त कर सकता है।

जीवन की व्यापकता का अनुभव उन विशिष्ट स्थितियों में संभव हो पाता है जब भावजगत् की पूर्णता का समर्पित स्वरूप किन्हीं अपेक्षाओं से संचालित न होकर स्वतंत्र अस्तित्व के साथ अपनी गरिमामय प्रस्तुती को सुनिश्चित कर पाता है। ज्ञान के आधार पर किये जाने वाले पुरूषार्थ में विभिन्न स्थितियों की विवेचना और उनका समयानुसार मूल्याँकन तार्किक विधि से संतुष्टि एवं असंतुष्टि के संदर्भ में प्रायः होता रहता है लेकिन भावजगत् से सम्बद्ध प्रसंगों में आँशिक प्राप्ति की गुँजाईश किसी परिणाम के लिए नहीं अपितु केवल भाव–विभोर हो जाने की परिणिति ही परिलक्षित होती है। सामान्य गतिविधियों की अवधारणा पर कार्य करते हुए व्यक्तिगत् जीवन की बौद्धिकता के द्वारा उच्च स्तर की भावपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए शब्द, अर्थ, चिन्तन और किसी तरह के भौतिक स्वरूप की मान्यताओं को स्वीकार करने एवं कराने की चेष्ठाएँ भावजगत् की विशुद्धता पर कुठाराघात कर दिया करती हैं। मानवीय प्रवृत्तियों का वास्तविक स्वरूप सदा इस बात से भयभीत रहता है कि यदि भावजगत् की अनुभूतियों को अपनी शक्तियों के द्वारा प्रस्तुत नहीं किया गया तो स्वयं के आस्तित्व को कैसे स्थापित किया जा सकता है और इसी द्वन्द के कारण भावनाओं की गतिशीलता को श्रेष्ठ मनोभावों के माध्यम से स्थानान्तरित करने की स्थितियाँ निर्मित नहीं हो पाती हैं। जीवन में भावजगत् के प्रति सजगतापूर्ण व्यवहार सदा इस वास्तविक सत्य को रेखाँकित करता है, जिसमें स्वयं की आन्तरिक भावनाओं के लिए अधिकतम् सकारात्मक सहयोग की महत्ता सम्मिलित है जिससे भावजगत् के केन्द्रीय स्वरूप को पूर्णतया विकसित होने में मदद् मिल सके।

आत्मिक आभास : मानवता के लिए समर्पित जीवन को निरन्तर उत्थान के परिदृश्य पर कार्यरत रहना पड़ता है जिसके परिणाम स्वरूप ऐसे कई मोड़ मार्ग में आते हैं जिसके अन्तर्गत् आत्मिक आभास का स्पष्ट साक्षात्कार होता है। सामान्य दृष्टि से विचार करते हुए यदि देखा जाए तो अधिकतम् कार्यो की पूर्णता अपनी गति से होती रहती है इसी तारतम्य में कुछ महत्वपूर्ण परिस्थितियों की उत्पत्ति होती है और विशिष्ट निर्णयन के सहयोग से अनूठे कार्य अनायास ही सम्पन्न हो जाया करते हैं। भावजगत् से समयानुसार व्यक्तिगत् जीवन में अपेक्षित सहयोग प्राप्त होता रहे इसके लिए आत्मिक आभास की स्थितियों को गहराई से समझना आवश्यक होता है। कई बार किन्हीं स्थितियों को लेकर स्वयं तथा कुछ परिस्थितियों में समीप के व्यक्तियों को अनायास ही शुभ–अशुभ का आत्मिक आभास होता है जिसके अनुसार साधारण से लेकर विशिष्ट कार्यो में व्यक्तिगत, सामूहिक तथा सामाजिक बदलाव की स्थितियाँ निर्मित हो जाया करती हैं। जीवन की गतिशीलता में उच्च अवस्थाओं का प्रस्तुतीकरण किन परिस्थितियों में उत्पन्न होकर फलीभूत होता है और उसका बोध अनुभूति के क्षेत्र को व्यापक बनाकर मानवता के उत्थान में अपनी अमिट छाप को प्रायः आत्मिक आभास के रूप में सदा के लिये अंकित कर दिया करते हैं। यदि भावजगत् से अपेक्षित सहयोग प्राप्त करना है तो भावनात्मक स्तर के व्यापक स्वरूप में चेतना की विभिन्न अवस्थाओं के मध्य सकारात्मक सहसम्बन्ध बनाना आवश्यक है, जिससे स्वयं के आत्मिक अस्तित्व की रक्षा को सुनिश्चित किया जा सके।

जीवन की प्रक्रिया में आत्मिक आभास और उत्कृष्टता का अनुभवी स्वरूप जब एकाकार होता है तब भावजगत् का व्यावहारिक क्रियान्वयन अन्तर्मन के आनंद से स्वमेव सम्बद्ध हो जाता है। औपचारिक व्यवहार का निरन्तर प्रयोग आत्मिक आभास की सात्विक उपादेयता से व्यक्ति को दूर कर देता है जबकि अनौपचारिक जीवन की वास्तविक प्रस्तुति भावजगत् के अत्यधिक निकट होती है जिसके सुखद परिणाम सहजता से सम्पूर्णता की अनुभूति तक पहुँचाने में मदद्गार बन जाया करते हैं। सामान्य जीवन की गतिशीलता के अन्तर्गत् यदि स्वयं की मूलभूत प्रवृत्ति पर ध्यान दिया जाये तो यह पता चलता है कि आत्मिक स्थिति के आभास हेतु किस स्तर के पुरूषार्थ की अनुभूति व्यावहारिक जीवन

में की जा रही है जिससे भावजगत् से अपेक्षित सहयोग सहज रूप से प्राप्त किया जा सके। निजी जीवन के वास्तविक अनुभव इस तथ्य की अभिव्यक्ति करने में सदा समर्थ होते हैं जिसके अन्तर्गत् भावजगत् के रहस्योद्घाटन विशिष्ट रूप से समाहित रहते हैं और समयानुसार व्यक्ति को भावनात्मक सुदृढ़ता प्रदान करने में अपनी सार्थक भूमिका निभाया करते हैं। व्यक्तिगत् जीवन के उत्कर्ष को प्राप्त करने की अभिलाषा जब लक्ष्योन्मुखी स्वरूप में परिणित हो जाती है तब आत्मिक आभास की निरन्तरता ही भावजगत् से अपेक्षित सहयोग प्राप्त करने के निमित्त बन जाती है।

व्यावहारिक प्रेरणा : अन्तःकरण में सदा सकारात्मक भाव उमड़ता रहे और जीवन की गतिशीलता हेतु अपेक्षित सहयोग की स्थितियाँ बनती रहें प्रायः ऐसा सुनिश्चित हो पाना संभव प्रतीत नहीं होता है। सैद्धान्तिक दृष्टि से आदर्श स्थितियों की कल्पना और उनका व्यावहारिक स्वरूप के अन्तर्गत व्यक्तिगत् स्तर पर उच्चता का बोध निश्चित ही मन में संतोष के भाव को जागृत करने में सफल रहता है। जीवन में कर्म जगत् के अनुभव अपनी वास्तविक अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने में सक्षम हुआ करते हैं जिसमें सामान्यतः अतीत, वर्तमान एवं भविष्य के संदर्भ में पठन–पाठन, मनन–चिन्तन, वर्णन–विश्लेषण, निर्वचन–निष्कर्ष, सिद्धान्त–व्यवहार, निर्णय–निर्माण के साथ स्वीकृत–मनोभावों का विशेष योगदान होता है। किसी परिवेश में भावजगत् की सहभागिता को उस समय फलीभूत रूप में स्वीकार कर लिया जाता है जबकि विपरीत परिस्थितियों के भीतर सात्विक प्रवृत्ति के सुखद भाव अपनी नैतिकता के सानिध्य में व्यक्तिगत् स्तर पर मनःस्थिति में विद्यमान रहते हुए सही दिशा में अग्रसर रहने के लिए स्वयं के साथ–साथ अन्य व्यक्तियों को भी अभिप्रेरित करने में पूर्णतः सफल हो जाएँ। कई बार जीवन की सहजता का स्वरूप इतना व्यापक हो जाता है कि वह एक पक्ष के लिए अन्तर्मन के आनंद से सम्बन्धित रहता है तो दूसरे पक्षकार के संदर्भ में भावजगत् से अपेक्षित सहयोग की प्रासंगिकता को प्रश्नवाचक स्थितियों में लाकर खड़ा कर देता है जिसमें प्रायः प्रत्युत्तर की गुंजाईश के लिए शब्द, अर्थ, भाव एवं उनके विश्लेषण से जुड़ी स्थितियाँ लगभग सभी आश्चर्यचकित तथा अनुत्तरित मुद्रा में परिवर्तित हो जाया करती हैं। भावजगत् से अपेक्षित सहयोग व्यावहारिक रूप से प्राप्त हो सके इस स्थिति की मनोवैज्ञानिक अवधारणा यह अभिव्यक्त करती है कि व्यक्ति को स्वयं मानवीय मूल्यों एवं दिव्य गुणों को धारण कर उसके नियमित अभ्यास, ज्ञान के निरन्तर चिन्तन, आत्मिक स्थिति में रहने के लिए ध्यान की श्रेष्ठ अवस्था और जीवन की दिनचर्या में सेवाभाव के व्यवहार द्वारा सर्व को संतुष्ट करने का पुरूषार्थ अपने जीवन में अन्ततः समाहित करना ही होगा।

संवेदनाओं के स्तर पर भावजगत् से अपेक्षित सहयोग को व्यावहारिक जगत् में स्थायित्व प्रदान करने हेतु जीवन की नकारात्मक इच्छाओं एवं कुण्ठाओं से स्वयं को पूर्णतः मुक्त करने की आवश्यकता को गम्भीरता से स्वीकार करने हेतु प्रयास करना पड़ेगा। अन्तर्मन के आनंद को सदैव बनाये रखने के लिए भावजगत् का निष्पक्ष योगदान रहता है लेकिन अप्राप्ति की जिजीविषा, स्वार्थपूर्ण मानसिकता को क्षणिक मनोकामना से सम्बद्ध कर देती है जिससे व्यक्तिगत् जीवन, इन्द्रिय सुखों को सबकुछ मानकर स्वयं को उपभोगवादी प्रवृत्ति से जोड़कर निराशा की अनजानी स्थितियों में पहुँच जाया करता है। जीवन की विविधता के मध्य व्यक्ति को किसी न किसी रूप से भावजगत् से अपेक्षित सहयोग आत्मिक आभास की व्यावहारिकता के द्वारा प्राप्त होता रहता है लेकिन वर्तमान समय के प्रति चेतना शून्य मनःस्थिति को घटित स्थितियों के साथ प्रवाहित हो जाने के लिए स्वयं को निश्चिन्त कर देना असफल सोच का परिचायक होता है। भावजगत् की गरिमामय उपस्थिति जीवन की शुचिता को उच्च शिखर तक पहुँचाने में सफल होती है और व्यक्तिगत् स्तर पर यह स्वीकृति, उपलब्धि में परिवर्तित होकर निर्बलता पर निर्मलता की विजय के रूप में चहुँ ओर परिलक्षित होने लगती है।

अखण्ड चेतना : विराट स्तर पर जीवन को सर्वश्रेष्ठ स्वरूप में प्राप्त करने की अभिलाषा का गहन बोध मनुष्यता की उच्चता का प्रमाण होता है। व्यक्तिगत् जीवन की सात्विक गतिशीलता इस बात को सदैव रेखाँकित करती है जिसके अन्तर्गत् भावजगत् से अपेक्षित सहयोग की निरन्तरता का सकारात्मक सम्बन्ध बना रहता है।

मानवीय चिन्तन की व्यापकता अन्तर्मन के आनंद को जीवन के बहुआयामी स्वरूप में परिवर्तित करने के लिए प्रयासरत रहती है जिसे भावजगत् की निर्मलता से पूर्ण किया जा सकता है। जीवन में अत्यन्त लघु स्वरूप में परिलक्षित होने वाले कर्मो के प्रति अत्यधिक संचेतना से भरे–भाव निजी मानस को भाव–विभोर बनाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करते हैं। अन्तःकरण की चेतना के विभिन्न पक्षों में सहजता को विकसित कर लेने से जीवन की संवेदनशीलता के प्रति न्याय किया जा सकता है और यही दृष्टिकोंण व्यक्ति को सम्पूर्णता की अनुभूति तक पहुँचा देने में मदद्गार सिद्ध होता है। जीवन में लगभग सभी व्यक्तियों के साथ भावजगत् की भूमिका पूर्णतया निष्पक्षता से ओत–प्रोत स्वरूप में रहती है केवल उसे पवित्र भावनाओं के साथ स्वीकार करने की आवश्यकता होती है।

निजी स्तर पर जब कोई निर्णय लिया जाता है तब भावजगत् का स्वरूप अपनी सहभागिता को विभिन्न स्थितियों में आत्मिक आभास के माध्यम से सम्प्रेषित करने की चेष्ठा किया करते हैं जिसे व्यक्ति समयानुसार जाने–अनजाने रूप में तार्किक शक्ति का प्रयोग करके स्वयं को संतुष्ट करने का प्रयत्न करता रहता है। जीवन के उत्थान की दिशा को तय करते समय व्यावहारिक प्रेरणा ही कारगर उपाय के रूप में अपनी सार्थक उपस्थिति को सुनिश्चित करती है जिसे सात्विक मनोभावों के द्वारा स्वीकृत किया जा सकता है। विपरीत परिस्थितियों के निर्मित होने पर भी भावजगत् से अपेक्षित सहयोग प्राप्त होता रहे इसके लिए अखण्ड चेतना की जागृत अवस्था को सदा जीवन की वास्तविक सच्चाई से सम्बद्ध करके अनुभव किया जाना चाहिए जिसमें अच्छाई के प्रति सकारात्मक दृष्टि और उसकी निरन्तर स्मृति विभिन्न स्वरूपों में सीखने की संस्कृति को विकसित करते हुए स्वयं को अभिप्रेरित किया करती हैं। अतः जीवन की यथार्थता को समझकर सदैव भावजगत् से अपेक्षित सहयोग प्राप्त करते हुए अन्तर्मन के आनंद को बनाये रखना चाहिए जिससे सहजता से सम्पूर्णता की अनुभूति को सुनिश्चित किया जा सके।

मेरी अभिव्यक्ति

गोरक्ष शक्तिधाम सेवार्थ फ़ाउण्डेशन

प्रकृति ■ पर्यावरण ■ संस्कृति ■ अध्यात्म ■ बालशिक्षा

पर आधारित

पुस्तकों का प्रकाशन करने जा रहा है।

संग्रहों में प्रकाशित सर्वश्रेष्ठ काव्य रचना एवं सर्वश्रेष्ठ लघु कथा को चयन समिति द्वारा चयन कर दोनों रचनाकारों को प्रथक–प्रथक फाउण्डेशन की ओर से 11,000/- (ग्यारह हजार) प्रोत्साहन राशि का चेक, शाल एवं सम्मान पत्र प्रदान कर वर्ष 2022 (मध्यप्रदेश) में आयोजित होने वाले अखिल भारतवर्षीय सारस्वत सम्मान समारोह में पुस्तक विमोचन के अवसर पर सम्मानित किया जाएगा।

- प्रत्येक संग्रह में 101 रचनाकारों से अधिक का समावेश नहीं किया जाएगा।
- प्रतिभागी अपना पंजीकरण अपना नाम पता एवं 500/– की धनराशि प्रेषित कर अविलंब करा लें। शेष 1600/– राशि निर्धारित तिथि से पूर्व अपनी रचना के साथ प्रेषित कर करा सकते हैं।

दोनों पुस्तकों हेतु रचनाएँ आमंत्रित हैं | **अंतिम तिथि 30 सितम्बर 2022**

- आपकी रचनाएँ स्वरचित, अप्रकाशित एवं मौलिक होनी चाहिये।
- आपके द्वारा प्रेषित चार रचनाओं में से चुनी गयी दो रचनाओं का प्रकाशन किया जायेगा।
- प्रकाशित पुस्तक की तीन प्रतियाँ लेखक को डाक द्वारा निशुल्क उपहार स्वरूप प्रेषित की जायेगी।
- आप अतिरिक्त पुस्तकें भी मंगवा सकते हैं जो प्रकाशक संस्था आपको लागत मूल्य पर उपलब्ध करायेगी।
- पुस्तक विवरण : साईज – 5.25 x 8.5 इंच, हार्डबाउण्ड, रंगीन आवरण (लेमिनेटेड), इनर ब्लैक एवं व्हाईट होगा।
- यह पुस्तक आई.एस.बी.एन. के साथ प्रकाशित की जायेगी।

काव्य / लघुकथा हेतु सहभागिता राशि 2100/–

बैंक विवरण

Bank Name	:	IDBI Bank
Name	:	Shivnandan Nath
Account No.	:	0088104000338141
IFSC Code	:	IBKL0000088

विशेष :

- काव्य रचना 20 पंक्तियों से अधिक नहीं हानी चाहिये (कम से कम चार रचनाएँ प्रेषित करनी आवश्यक है)।
- प्रत्येक लघु कथा शब्द सीमा अधिकतम 250 शब्द होनी चाहिये (कम से कम चार लघु कथाएँ प्रेषित करनी आवश्यक है)।
- रचनाओं का मुद्रण लेखक / लेखिका के नाम एवं फोटो के साथ किया जाएगा।
- लेखक/लेखिका अपनी रचना यूनिकोड/कृतिदेव – वर्ड फाईल में टाईप करा कर ही भेजें। साथ में पी.डी.एफ. फाईल भी संलग्न करें।

प्रकाशक

गोरक्ष शक्तिधाम सेवार्थ फ़ाउण्डेशन

GORAKSH SHAKTIDHAM SEVARTH FOUNDATION

अध्यात्म | शिक्षा | संस्कृति

रचनाएँ निम्नलिखित ईमेल पर भेजें

editor.adhyatmsandesh@gmail.com

अधिक जानकारी के लिये सम्पर्क करें

योगी शिवनन्दन नाथ | 6266441148

महात्मा बुद्ध का संदेश- अप्प दीपो भव

> **छठी सदी ई. पू. में महापुरुष महात्मा बुद्ध ने बौद्ध धर्म की नींव रखी। यह धर्म आज भी विश्व के एक तिहाई भाग में अर्थात् चीन, तिब्बत, मंचूरिया, कोरिया, जापान, इंडोनेशिया, मंगोलिया, मलाया, बर्मा, लंका, नेपाल आदि देशों में प्रचलित है।**

डॉ. साधना गुप्ता
(वर्ल्ड रिकॉर्ड होल्डर)
सहायक आचार्य
(राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय)
झालवाड़, राजस्थान

परिचय– बुद्ध शक्य गणराज्य के शासक शुद्धोदन के पुत्र थे। इनके बचपन का नाम सिद्धार्थ और गोत्र गौतम था। शाक्य शाखा से सम्बंधित होने के कारण इन्हें शाक्य मुनि भी कहा जाता है। इनकी माता कोलीय वंश की राजकुमारी थी। इनका जन्म कपिलवस्तु के समीप लुम्बिनी वन में वैशाख मास की पूर्णिमा को हुआ था। बाद में अशोक ने यहाँ पर स्तम्भ गढ़वा दिया था जिस पर अंकित था,– यहाँ शाक्य मुनि बुद्ध का जन्म हुआ था। इनके जन्म पर असित नामक ज्योतिषी ने भविष्यवाणी की थी कि – यह बालक या तो महान चक्रवर्ती सम्राट बनेगा या फिर महान संन्यासी बनकर नये धर्म की नींव रखेगा।

सिद्धार्थ का मन बचपन से ही सांसारिक कार्यों से विरक्त था। पिता द्वारा सम्पूर्ण ऐश्वर्य जुटाने के बाद भी ये एकांत में बैठकर गूढ़ रहस्यों पर चिंतन–मनन करते रहते थे। समाधिस्थ भी हो जाते थे। सोलह वर्ष की अवस्था में इनका विवाह यशोधरा नामक सुंदर राजकुमारी से हो गया तथा कुछ समय पश्चात् पुत्र राहुल का जन्म हुआ। तब आपने कहा,– एक बन्धन और उत्पन्न हो गया।

महाभिनिष्क्रमण– बौद्ध सूत्रों के अनुसार वृद्ध पुरुष, दुःखी रोगी, मृत शरीर तथा संन्यासी, इन चार दृश्यों को देखकर सिद्धार्थ ने संसार को दुःखों का घर एवं अनित्य और संन्यास को इससे निवृत्ति का मार्ग माना। परिणाम स्वरूप घर छोड़ने का निश्चय कर लिया और 29 वर्ष की अवस्था में अपनी पत्नी और बच्चे को सोता हुआ छोड़कर संन्यासी बनने हेतु गृह त्याग कर निकल पड़े। केश कटवा कर, भगवा वेश धारण कर लिया। सत्यानुसन्धान हेतु आलारकलाम एवं उद्रक रामपुत्र से योग विद्या का उपदेश प्राप्त किया। परंतु अशांत

रहे, तब गया के समीप निरंजना नदी किनारे उरुवेला वन में वहाँ के अरण्यगत रमणीय मार्ग को देखकर सत्य के साक्षात्कार हेतु छः वर्षो तक कठोर तपस्या की। शरीर सूखकर काँटा हो गया पर अन्य लाभ न मिला। जनश्रुति है एक बार उस वन से कुछ स्त्रियों ने यह गीत गाते हुए प्रस्थान किया,– अपनी वीणा के तारों को इतना ढीला भी मत छोड़ो की बजे ही नहीं और इतना कसो भी मत कि टूट ही जाये। इसे सुनकर सिद्धार्थ के चिंतनशील मन ने मध्यम मार्ग का अनुसरण करने का निश्चय किया तथा सुजाता नामक कन्या से खीर ग्रहण की। इसके बाद निरंजना नदी के तट पर पीपल के वृक्ष के नीचे समाधि लगा दी। आठवें दिन उन्हें सत्य के दर्शन हुए और अब वे बुद्ध (जिसे ज्ञान प्राप्त हो) के नाम से प्रसिद्ध हुए। यह स्थान बोधगया और यह वृक्ष बोधिवृक्ष कहलाया।

बौद्धमत व उपदेश– आपने अपने विचारों का प्रचार करने के निश्चय के साथ बौद्ध धर्म की स्थापना की। आर. आर. दिवाकर ने कहा है,– यदि गौतम के गृह त्याग ने संसार को बुद्ध प्रदान किया तो उसके धर्म प्रचार सम्बन्धी निर्णय से संसार को बुद्धमत प्राप्त हुआ।

इन्होंने अपना पहला उपदेश सारनाथ में दिया। जो धर्मचक्र परिवर्तन कहलाया। तत्पश्चात् काशी, राजगृह, कपिलवस्तु, उरुवेला इत्यादि स्थानों पर उपदेश दिये। इनके अनुयायियों में कौशल नरेश प्रसेनजित्, मगध नरेश बिम्बसार, व अजातशत्रु इत्यादि सम्मिलित थे।

निर्वाण– अस्सी वर्ष की अवस्था में 483 ई. पू. में वैशाख मास की पूर्णिमा के दिन कुशीनगर नामक स्थान पर निर्वाण प्राप्त किया।

बौद्धमत – उपनिषदों द्वारा वैदिक कर्मकांड के विरुद्ध आध्यात्मिक अनुभव को ही परम पुरुषार्थ घोषित करते हुए जिस धार्मिक क्रांति की उद्भावना का प्रारंभ जनसाधारण में किया गया था उसे ही महावीर स्वामी एवं गौतम बुद्ध ने विस्तृत रुप दिया। कर्मकांड के विरुद्ध धार्मिक चेतना को जागृत किया। डॉ. राधाकृष्णन् के शब्दों में ,– बुद्ध के धर्म का उद्देश्य यह था कि उपनिषदों के आदर्शवाद को उसके उत्कृष्ट रूप में स्वीकार करके, उसे मनुष्य जाति की दैनिक आवश्यकताओं के लिए उपयोगी बना दिया जाए। ऐतिहासिक बौद्ध ध र्म का तात्पर्य है ,–उपनिषदों का जनसाधारण में प्रचार। हम यह कह सकते हैं कि ब्राह्मण धर्म के अपने मौलिक सिद्धांतों में वापस लौट आने का नाम बौद्ध धर्म है। बुद्ध का उद्देश्य एक सुधारक के रूप में उपनिषदों में प्रचलित सिद्धातो को नए ढांचे में परिवर्तित करके उसमें प्रतिपादित सत्यों को पुनः प्राधान्य में लाना था (डॉ. राधाकृष्ण न : भारतीय दर्शन पृ.106) लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने भी गीता रहस्य (गीता एवं बौद्ध ग्रंथ, पृ. 575) में कहा है,– बौद्ध धर्म भी अपने वैदिक धर्म रूप पिता का पुत्र है जो कि अपनी संपत्ति का हिस्सा लेकर किसी कारण से विभक्त हो गया है, अर्थात् यह कोई पराया नहीं है, अपितु इसके पहले यहाँ पर जो ब्राह्मण धर्म था, उसी की यहीं उपजी हुई एक शाखा है।

वास्तव में यह वह समय था जब जनसाधारण वेद के वास्तविक ज्ञान को विस्मृत कर कर्मकांड को ही सर्वोच्च समझ बैठा था। ऐसे में बुद्ध ने अथाह ज्ञान सागर वेदों से वास्तविक रत्नों को निकालकर कर्मकांड का त्याग करके एक सुगम एवं मानव कल्याणकारी बौद्ध धर्म की स्थापना की। 18 पुराणों में प्रसिद्ध भागवत पुराण *(1/3/24)* और अग्नि पुराण *(26/1/3)* में बुद्ध अवतार का उल्लेख मिलता है।

बुद्ध महान योगी थे। उन्होंने स्वयं मार्ग का अन्वेषण कर समाधिस्थ होकर ज्ञान प्राप्त किया था जो केवल एक जन्म का न था। अनेक पूर्ववर्ती जन्मों के अर्जित पुण्यों का संचित फल था। इनके सिद्धान्त वड़े सरल एवं स्प्ष्ट थे–

1.**चार आर्य सत्य** – दुःख के विषय में उनका चिंतन चार आर्य सत्य – दुःख, दुःख का कारण, दुःख निरोध, दुःख निरोध मार्ग के रूप में अभिव्यक्त हुआ है।

2. **अष्टांगिक मार्ग** – सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वचन, सम्यक् कर्म, सम्यक् अजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति, सम्यक् समाधि पर चलकर व्यक्ति अपनी तृष्णाओं का दमन कर सकता है।

3. **मध्यम मार्ग** – व्यक्ति न अत्यधिक भोग करे न घोर तपस्या। अपितु इन दोनों के मध्यम मार्ग को अपनाए। आपने इसे ही निर्वाण प्राप्ति का मार्ग बताया।

4. **दस शील** – नैतिक स्तर ऊँचा उठाने हेतु अनुयायियों को इन दस शीलों का पालन करने को कहा,– अहिंसा का पालन, सत्य बोलना, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य (भोग विलास से दूर रहना), नृत्य–संगीत का त्याग, सुगन्धित पदार्थो का त्याग, असमय भोजन का त्याग, कोमल शैया का त्याग, कामिनी–कंचन का त्याग। बौद्ध गृहस्थ के लिये इनमें से प्रथम पाँच नियमों का पालन करना तथा भिक्षुक–भिक्षुणियों के लिए सभी दस नियमों का पालन करना आवश्यक है।

5. **सदाचार पर बल**– मानसिक शांति प्राप्त करने हेतु सदाचार पर बल देते हुए घृणा व व्यभिचार से बचते हुए परोपकारी जीवन जीने को प्रेरित किया।

6. **अहिंसा** – मन, वचन व कर्म से किसी को भी कष्ट न पहुँचाने की कहा। हिंसक यज्ञों और पशु बलि का विरोध किया। पर्यावरण संतुलन को बनाए रखने हेतु वनस्पति व प्रकृति संरक्षण की बात की।

7. **स्वावलम्बन पर बल** – स्वावलम्बन द्वारा मोक्ष प्राप्ति की बात करते हुए कहा – व्यक्ति स्वयं अपने भाग्य का निर्माता होता है। स्वयं ही दुःखों से मुक्ति पा सकता है। अपने शिष्य आनन्द से उन्होंने कहा – हे आनन्द! मेरा या किसी और का आश्रय लिए बिना अपनी मुक्ति के लिये निरन्तर प्रमाद रहित प्रयत्न करो। तुम स्वयं अपने लिये पथ प्रदर्शक बनो। ईश्वर व अन्य किसी देवता की कृपा पर निर्भर रहने के बदले स्वयं अपने कर्मो द्वारा अपना उद्धार करो।

8. **वैदिक आडम्बरों का विरोध** – वेदों को मानवीय कृति मानते हुए वैदिक धर्म के कर्मकांडों, आडम्बरों , यज्ञों व ब्राह्मणों के प्रभुत्व का विरोध किया।

9. **सामाजिक समानता के समर्थक** – जाति व्यवस्था का विरोध कर जन्म के आधार पर नहीं कर्म से घृणा की बात करते हुए सभी को मोक्ष प्राप्ति का अधिकार दिया।

महात्मा बुद्ध का समाज को अवदान –

धार्मिक अवदान – 1.**सरल धर्म** – इनका धर्म आडम्बर, कर्मकांड एवं कुरीतियों रहित सरल आचार प्रधान धर्म था अतः लोकप्रिय हुआ। इसकी लोकप्रियता ने हिन्दू धर्म में सुधार की प्रेरणा दी।

2.**मूर्ति पूजा का प्रसार** – महायान सम्प्रदाय ने बुद्ध व

बोधिसत्वों की मूर्तियाँ बनाकर उनकी पूजा प्रारम्भ की ।जिससे भा. रत में मूर्ति पूजा का प्रसार हुआ।

3. मंदिरों का निर्माण – इन मूर्तियों की रक्षा के लिये मंदिर निर्माण की प्रथा प्रचलित हुई और अनेक कलात्मक मंदिर बने।

4. हिन्दू धर्म में सुधार– यज्ञों में सुधार होकर पशुबलि प्रथा समाप्त होने लगी। मानव– मानव में स्नेह, सौहार्द की भावना का प्रसार हुआ।

दार्शनिक अवदान – बौद्ध धर्म के अनीश्वरवाद, अनात्मवाद, प्रतीत्य समुत्पाद नियम, आंतरिक शुद्धि एवं निर्वाण इत्यादि दार्शनिक सिद्धान्त महत्वपूर्ण हैं। असंग, वसुबन्ध, नागार्जुन, धर्मकीर्ति के योगदान के साथ शून्यवाद (माध्यमिक दर्शन) का महत्वपूर्ण स्थान है।

सामाजिक अवदान – 1 उच्च नैतिक जीवन पर बल – इनके दस शीलों ने जन–जन के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाया। त्याग, सदाचार, सेवा, परोपकार इत्यादि ने समाज को प्रभावित किया।

2. बौद्धिक स्वतंत्रता – अपना मार्गदर्शक स्वयं बनों के संदेश से बौद्धिक स्वतंत्रता को प्रोत्साहन मिला। असंग, वसुबन्ध, नागार्जुन, धर्मकीर्ति इत्यादि विद्वानों ने स्वतंत्र चिंतन का विकास किया।

3. समानता पर बल – जाति प्रथा का विरोध कर सामाजिक समानता पर बल देकर मोक्ष का द्वार सभी के लिये खोल देने से जाति बन्धन में शिथिलता आयी।

4. अहिंसा – अहिंसा ने जन सामान्य को शाकाहारी बनाया।

शैक्षणिक अवदान– नालन्दा, वल्लभी, तक्षशिला, विक्रमशिला इत्यादि बौद्ध मठ शिक्षा के प्रसिद्ध केंद्र रहे। इनमें दूर दूर से जिज्ञासु शिक्षा ग्रहण करने आते थे। इन्होंने प्राचीन भारतीय संस्कृति का प्रचार–प्रसार किया।

साहित्यिक अवदान – हीनयान शाखा का साहित्य पाली में तथा महायान शाखा का साहित्य संस्कृत में रचा गया। नागार्जुन ने माध्यमिक दर्शन का तथा दिग्नाग ने न्यायप्रवेश व आलम्बन परीक्षा नामक ग्रन्थों में तर्क शास्त्र का विकास किया। जातक एवं दिव्यावदान में बुद्ध व बोधिसत्वों के पूर्व जन्म की कथाओं का वर्णन है। सुत्त पिटक, विनय पिटक व अभिधम्म पिटक में बौद्धों की अमूल्य साहित्यिक निधि है। मिलिंद पन्हों, महावस्तु, मंजू श्रीमूलकल्प आदि बौद्ध ग्रन्थ ऐतिहासिक जानकारी सुलभ करवाते हैं। वस्तुतः बौद्ध साहित्य भारतीय साहित्य का अभिन्न अंग है।

राजनैतिक अवदान – अशोक ने बौद्ध धर्म के अहिंसा सिद्धांत से प्रभावित होकर युद्ध की नीति त्यागकर धम्म विजय की नीति को अपनाया। इनके द्वारा सामाजिक समानता पर बल देने से भारत में राजनीतिक एकता स्थापित होने लगी। ई. बी. हैवेल ने लिखा है ,– बौद्ध धर्म ने भारतीयों को एक राष्ट्र बनाने में उसी प्रकार से सहायता दी, जिस प्रकार ईसाई मत ने एंग्लो सैक्सन काल में इंग्लैंड को सहायता दी। (भारतीय धर्म व दर्शन पृ.68)

प्रशासनिक अवदान – इस धर्म से प्रभावित होकर अशोक ने समस्त विश्व को एक कुटुंब मानते हुए प्रेम द्वारा उस पर विजय प्राप्त करने की चेष्टा की। रोमिला थापर ने लिखा है – अशोक ने इस धर्म से प्रभावित होकर अपनी शासन नीति में पशु पक्षियों, कृषकों, निर्धनों तथा वन में रहने वाले आदिवासियों के प्रति भी असाधारण सहानुभूति का प्रदर्शन किया और प्रजा की भलाई के लिए अनेक कार्य किये। हर्ष तथा कनिष्क भी प्रजा पालक शासक थे।

कलात्मक अवदान – सभी क्षेत्रों– चित्रकला, स्थापत्य, वास्तु, शिल्प कला में ऐसी कलाकृतियों का सृजन किया है जो पाश्चात्य सभ्यता की श्रेष्ठ कलाकृतियों के समक्ष रखी जा सकती है।

स्थापत्य कला – अनेक कलात्मक चौत्यों, विहारों तथा स्तूपों का निर्माण किया गया। अशोक ने सर्वप्रथम कला के क्षेत्र में पाषाण का प्रयोग किया। उन्होंने 84,000 स्तूप बनवाये, जिनमें सांची, अमरावती एवं भारहुत के स्तूप प्रमुख हैं। साथ ही अनेक स्थानों पर कलात्मक मंदिरों का निर्माण भी किया जैसे,– कार्ले का गुहा मंदिर, बोधगया का मंदिर।

मूर्तिकला – बुद्ध तथा बोधिसत्वों की अनेक मूर्तियाँ बनायी गयीं। सर्वप्रथम बुद्ध की मूर्ति का निर्माण गांधार में हुआ। फिर इसके साथ–साथ ही मथुरा, नालन्दा एवं सारनाथ भी मूर्तिकला के प्रमुख केंद्र बन गये। सारनाथ में बनी बुद्ध की मूर्ति प्रसिद्ध है।

चित्रकला – बाघ, बादामी, अजंता, एलोरा इत्यादि की गुफाओं में बौद्ध चित्रकला देखी जा सकती है। विश्वविख्यात अजंता गुफा के अधिकांश चित्र महात्मा बुद्ध के पूर्व जन्म से संबंधित हैं ।

नाट्य तथा संगीत – अशोक के समय में बौद्ध धर्म के प्रचार हेतु बुद्ध के जीवन से संबंधित घटनाओं पर नाटक खेले जाते थे, जिनमें संगीत का प्रयोग किया जाता था। यह संगीत व नाटक के विकास का हेतु बना।

विदेशों में भारतीय संस्कृति का प्रसार – बौद्ध धर्म के प्रचार के लिये अनेक बौद्ध भिक्षुक चीन, लंका, जापान, तिब्बत, यूनान इत्यादि देशों की यात्रा पर गये। जहाँ बौद्ध धर्म के संग अप्रत्यक्ष रूप से भारतीय संस्कृति का भी प्रसार किया। इन भारतीय विद्वानों से प्रभावित होकर विदेशी आदिवासियों ने बौकृ धर्म को स्वीकार कर लिया। इसके बाद वे भारत भू को पवित्र मान यहाँ की यात्रा में गौरव समझने लगे। फाह्यान, ह्वेनसांग, इत्सिंग इत्यादि चीनी यात्रियों ने भारत की यात्रा कर अपने देश लौटकर अपने देशवासियों को भारतीय संस्कृति से परिचित करवाया और भारत के विश्व के अन्य देशों के साथ सांस्कृतिक तथा आर्थिक संबंध स्थापित हुए ।

सार रूप में इतना कि यह कर्मकांडों, आडम्बरों से मुक्त विश्वबंधुत्व के सिद्धांत पर आधारित सरल धर्म था जिसका उद्देश्य व्यक्ति – व्यक्ति को दुखों से मुक्त कर निर्वाण प्राप्ति के लिए प्रेरित करना था। वेदों और उपनिषदों के आत्म तत्व का मंथन कर प्रस्तुत ये जीवन सिद्धांत वर्तमान में भी मानव मात्र के विकास व कल्याण में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। मानसिक अशांति झेलते मानव को जीवन का संदेश देने में सक्षम हैं।

मानव - ऐक्य से बह्म - ऐक्य का सफर : गुरू गोबिंद सिंह

मानवता के इतिहास में ऐसे पुरुष कम होते हैं जो इतिहास की समग्र चेतना को आत्मसात् करते हुए भी इतिहास की दिशा बदल देते हैं। वे परस्पर विरोधी दिखने वाली प्रवृत्तियों में से समाज के लिए नवीन मार्ग का अन्वेषण करते हैं। ऐसे ही राष्ट्रसंत, शौर्य-पुंज एवं लोकचेतना के गायक गुरु गोबिंद "ह जी थे। उनके विषय में हजारीप्रसाद द्विवेदी (सिक्ख गुरुओं का पुण्य स्मरण) का कथन है - 'बड़े सौभाग्य से देश को ऐसा लोकनायक प्राप्त होता है। भारतवर्ष ऐसा ही गौरवशाली देश है, जिसने गुरु गोबिन्द सिंह जैसे सच्चे वीर को जन्म दिया। पवित्र चरित्र, अडिग उत्साह, अकुण्ठ साहस, अकृत्रिम औदार्य, अकुतोमय मनोबल, दीन-दुखियों का निश्चित सहाय, अत्याचार का असंदिग्ध प्रतिरोध, विद्या और तपस्या का नियत संरक्षण और मनोबल का अक्षय भंडार ही वीर है। गुरु गोबिंद सिंह इन सब गुणों के मूर्तिमान रूप थे।'

डॉ. शकुंतला कालरा

एसोसियेट प्रोफेसर मैत्रेयीकॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली

मध्ययुगीन भारतीय साधना एवं सामाजिक व्यवस्था को प्रभावित करने वाली सिक्ख गुरुओं की वाणी का अपना अलग महत्त्व है। दशम गुरु का दशम ग्रंथ समसामयिक धाराओं का केन्द्रबिंदु है। सिक्खों के दसवें और अंतिम गुरु के रूप में समादृत गुरु गोबिंद सिंह भारतीय संस्कृति के महान उन्नायक हैं। उन्होंने इतिहास को नया मोड़ दिया। उनके द्वारा स्थापित खालसा–पंथ से नए युग का सूत्रपात हुआ। खालसा–पंथ ऐसे मानवों की संस्था थी जिसमें जाति–भेद से परे निम्न समझी जाने वाली जातियां जैसे नाई, छीपा, लोहार, मोची, ठठेरे आदि थीं। उनका व्यवसाय भी निम्न था जिसमें कुल, गोत्र किसी का भी महत्त्व न था। मानवीय मूल्यों की स्थापना ही खालसा–पंथ का प्रमुख उद्देश्य था।

गुरु गोबिंद सिंह जी का व्यक्तित्व परस्पर विरोधी विशेषताओं का पुंज है। वह तलवार और कलम दोनों के धनी हैं। वह कुशल संगठनकर्त्ता के साथ प्रतिभाशाली कवि भी हैं।

माछीवाड़े विच बैठा, शहंशाह जहान दा / हथ विच खंडा पिछे, ढासणा कमान दा।

अर्थात् यह कैसे संत हैं जिनका स्वरूप संतों जैसा नहीं वरन् सिपाही वाला है। हाथ में तीर और तलवार है। श्री गुरु गोबिंद सिंह पहले महापुरुष थे जिन्होंने भारतवर्ष में विशुद्ध हिंदू राष्ट्र की सीापना–हेतु न केवल घोषणा की बल्कि स्वयं आयुपर्यत उसके लिए संघर्षशील रहे। नैणा देवी के शक्तिपीठ में जाकर उन्होंने उद्घोष किया –

सकल देश में खालसा पंथ गाजे, जगे धर्म हिंदू सभै द्वंद्व भाजे।

गुरु गोबिंद सिंह का काल राजनीतिक दृष्टि से ओरंगजेब का ही काल था। कट्टरपंथी होने के कारण ओरंगजेब ऐसे इस्लामी राज्य की स्थापना करना चाहता था जिसमें गैर–मुस्लिम कोई न हो। ओरंगजेब के गद्दी पर बैठते ही भारतीय संस्कृति की एकात्मकता के पतन की प्रक्रिया प्रारंभ हो गई थी। गैर–मुस्लिम जातियों के प्रति जेहाद खड़ा कर अपने धर्म के काज़ियों तथा उलेमान को प्रसन्न करना उसने अपना ध्येय बना लिया था। ओरंगजेग

ने हर क्षेत्र में हिन्दुओं और मुसलमानों के लिए अलग–अलग कानून लागू किए। ओरंगजेब की धर्माधता तब अपनी चरमसीमा पर पहुँचती दिखाई देती है जब वह हिन्दुओं को धर्म परिवर्तित करने के लिए बाध्य करता दिखाई देता है। इसके लिए हिन्दुओं को असह्य यातना दी जाने लगी। उनके धार्मिक स्थानों को अपवित्र किया जा रहा था। उन्हें तलवार की नोंक पर मुसलमान बनने के लिए मज़बूर किया जाने लगा।

इसी समय गुरु गोबिंद सिंह जी का आविर्भाव हुआ। गुरु गोबिंद सिंह का व्यक्तित्व बहुआयामी था। वह एक सहृदय कवि और अदम्य योद्धा होने के साथ–साथ प्रखर मनीषी थे। डॉ. महीपसिंह के अनुसार – "गुरु गोबिंद सिंह का युग इतिहास के विषमतम युगों में से था और वे विषमतम युग की अन्यतम उपज थे। उनके व्यक्तित्व में एक कवि, भाषाविद्, राष्ट्र–निर्माता, योद्धा, क्रांतिकारी तथा आध्यात्मिक एवं लौकिक गुणों का अदभुत् सामंजस्य था। यह सामंजस्य ही उन्हें भारतीय इतिहास का सबसे अधिक रोचक व्यक्तित्व बना देता है।"

डॉ. महीपसिंह की पुस्तक के आमुख में लिखे ये विचार गुरु गोबिंद सिंह जी के बहु–आयामी व्यक्तित्व का परिचय देते हैं। एक ओर वे युद्धरत सैनिक हैं तो दूसरी ओर कलम के सिपाही। रहीम की तरह कलम और तलवार दोनों उनके हथियार हैं, जिनके द्वारा वह मानव–धर्म की प्रतिष्ठा करना चाहते हैं। उनका सारा जीवन मानवता के लिए समर्पित रहा है। उन्होंने प्रत्येक मनुष्य को समान दृष्टि से देखा। उनका मत है कि संसार के सभी लोग एक ही जाति के लोग हैं। उनकी दृष्टि में हिन्दू, तुर्क एक ही मनुष्य की जात है। नानक की भांति वह मानते हैं कि सभी जीव उसी एक परमात्मा का ही अंश हैं। गुरु गोबिंद सिंह जी का युग वह युग था जहां ईश्वर और खुदा के प्रतिद्वन्द्वी एक दूसरे को ही अपना प्रतिद्वंदी समझते थे। उन्होंने दोनों में वैर–वैमनस्य को दूर कर धार्मिक सहिष्णुता का संदेश दिया –

हिन्दु तुरक कोऊ राफ जी इमाम शाफी / मानस की जात सबै एकै पहचानबो।
करता करीम सोई राजक रही ओई / दूसरो न भेद कोई भूल भ्रम मानबो।
एक की सेव सभ ही की गुरु देव एक, / एक ही सरूप सबै एकै जाति जानबो।

गुरु गोबिंद सिंह जी को सिक्खों के पहले धर्मगुरु गुरु नानकदेव जी से मानवतावादी चेतना विरासत में मिली थी। गुरु नानक जी ने मानव के सहज धर्म में आस्था और विश्वास को व्यक्त किया था तथा हिन्दू–मुसलमान सबको एक ही ब्रह्म का अंश मानकर मानवतावाद का प्रचार किया था। गुरु गोबिंद सिंह ने भी मानव धर्म को सर्वोपरि मानते हुए गुरु नानक की इस विचारधारा को – 'न को हिन्दू न को मुसलमान' एवं 'न को बैरी न बेगाना' पूर्णरूपेण ग्रहण किया। धर्म, जाति, कुल, गोत्र से परे मानव–ऐक्य का समर्थन किया। 'विचित्र नाटक' में गुरु गोबिंद सिंह स्पष्ट कहते हैं कि उनका जन्म धर्म की स्थापना के लिए हुआ है और धर्म से उनका तात्पर्य मज़हब से न होकर मानव धर्म से है –

इह कारनि प्रभु मोहि पठायो / तब मैं जगत जनम धर आयो।
जिमि तिन कहीं तिने तिमि कहिहौं / और किसू ते बैर न गहिहौं।

उनका धर्म ऐसा मानव धर्म है जिसमें मानव को मानव की भांति रहने के अधिकार को महत्त्व प्राप्त है। जो मानव को मानव ही नहीं समझता जाति, धर्म के आधार पर भेदभावपूर्ण रवैया अपनाता है वह गुरु गोबिंद सिंह की दृष्टि में अधर्मी है।

मानवता भारतीय संस्कृति का अन्यतम गुण है। गुरु गोबिंद सिंह ने इस मानवतावाद के सिद्धांत को अपने जीवन में उतारकर एक आदर्श प्रस्तुत किया। उनका पूरा जीवन मानवता के लिए समर्पित रहा। उन्होंने प्रत्येक मनुष्य को समान दृष्टि से देखा। भक्त तुलसीदास की भी 'निज प्रभुमय देखहिं सकल जग' की दृष्टि थी। संसार के सभी लोग एक ही मानवता के अंग हैं। उनके मन में किसी के लिए कोई भेदभाव नहीं, क्योंकि सभी का निर्माण एक ही ज्योति से हुआ है। नानक देव की तरह 'एक नूर ते सब जग उपजा' कहकर गुरु गोबिंद सिंह ने जनसामान्य को बार–बार यही समझाया है कि जाति–भेद मनुष्य द्वारा बनाया गया है। ऊँची जाति वालों ने ही यह भेद बनाया है। सबकी शारीरिक रचना एक है।

इतना ही नहीं गुरु गोबिंद सिंह पुराण–कुरान दोनों में ही एक सत्य की अभिव्यक्ति मानते हैं। हिन्दुओं की पूजा, मुसलमानों की नमाज दोनों ही उस मालिक की बंदगी के साधन हैं। द्वार अलग–अलग हैं, गंतव्य एक है। वह हिंदुओं के देवस्थल मंदिर और मुसलमानों की मस्जिद में कोई अन्तर नहीं मानते। उनकी दृष्टि में अन्तर करने वाले भ्रम फैलाते हैं –

देहुरा मसीत सोई पूजा और निवाज ओई, / मानस सभै एक पै अनेक को भ्रमाउ है।
देवता अदैव जछ गंधव तुरक हिंदू / निआरे–निआरे देसन के भेस को प्रभाउ है।
एकै नैन एकै कान एकै देह एकै बान / खाक बाद आतस और आब को रलाउ है।
अलह अभेख सोई पुरान औ कुरान ओई / एक ही सरूप सभै एक ही बनाउ है।

मानवतावाद के संपोषक गुरु गोबिंद सिंह जी हर मनुष्य को ईश्वर का ही प्रतिरूप मानते हैं। उनकी दृष्टि में जाति–पाति का भेद मनुष्यों द्वारा बनाया गया है। डॉ. हुकुमचंद राजपाल के अनुसार – "गुरु गोबिंद सिंह जी ने अपने सामाजिक दायित्व का निर्वाह सम्यक् रूप से किया तथा सामाजिक नैतिकता को दृष्टि में रखते हुए समाज में व्याप्त जातियता की भावना और परस्पर वैषम्य ऊंच–नीच की धारणा का अपने व्यवहार के धरातल पर खण्डन किया।" सहिष्णुता की भावना की पोषक इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि वह मानव ऐक्य के पक्षधर थे। "एको अहम् बहुस्याम" अर्थात् समस्त सृष्टि उस एक ही चैतन्य शक्ति का प्रसार है। वेदों की यही विचारधारा गुरु गोबिंद सिंह जी के मानवतावाद का मूल आधार है।

गुरु गोबिंद सिंह ने हिन्दू–मुस्लिम ही नहीं सभी धर्म–मतों में समन्वय स्थापित करने की दृष्टि से अन्य सिक्ख–गुरुओं की भांति अपनी लेखनी से सराहनीय प्रयास किए। हिंदी, पंजाबी, फारसी आदि भाषाओं के ज्ञाता एवं संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित, विद्वान गुरु गोबिंद सिंह जी का साहित्य–सृजन तीनों भाषाओं में मिलता है। 'दशम–ग्रंथ' में संकलित गुरु गोबिंद सिंह जी की सभी रचनाएं गुरुमुखी लिपि में हैं। ये रचनाएं – जापु, अकालउसतुति, विचित्र नाटक, चण्डी–चरित्र, चण्डी–चरित्र द्वितीय, वार भगउती

जी की (चण्डी दी वार), ज्ञानप्रबोध, चौबीस अवतार, महंदी मीर, ब्रह्मावतार, रुद्रावतार, स्फुट सवैये, शस्त्रनाममाला, चरित्रोपाख्यान, जफरनामा, फारसी में लिखी हिकायतें।

एक हजार चार सौ अट्ठाइस पृष्ठों में सिमटी उपर्युक्त सामग्री का कुछ अंश (चण्डी दी वार) पंजाबी भाषा में है और जफरनामा तथा हिकायतें आदि कुछ फारसी में हैं। पचास पृष्ठों की इन तीन रचनाओं के अतिरिक्त शेष सभी रचनाएं हिन्दी भाषा की हैं।

गुरु गोबिंद सिंह जी का समस्त काव्य न केवल मानव–ऐक्य का काव्य है वरन् ब्रह्म अथवा ईश्वर–एक्य का भी अद्‌भुत समन्वय है। गुरु गोबिंद सिंह जी मध्यकालीन साहित्य–धारा के उस युग के कवि हैं जो धर्म और संस्कृति–प्रधान है। उन्होंने इस युग के विभिन्न हिन्दू शक्तियों का भी समन्वय किया। शैवों, शाक्तों, वैष्णवों द्वारा रचित साहित्य का अनुवाद किया। पौराणिक कथानकों के माध्यम से सामयिक जीवन को चित्रित किया। भारतीय धर्मग्रन्थों में वर्णित लग. भग सभी अवतारों का चित्रण किया है। सिक्ख गुरुओं ने अवतारों को अधिक महत्त्व नहीं दिया। मध्यकालीन भारतीय संतों, विशेषत: निर्गुण काव्य की ज्ञानाश्रयी शाखा के संतों की भांति नानक–पंथ भी निराकार ईश्वर का उपासक है। सिक्ख–मत अद्वैतवाद का समर्थक है। अद्वैत के अनुसार ब्रह्म की सत्ता ही सत्य है। भारतीय चिंतन–परंपरा के अनुसार ब्रह्म के निर्गुण और सगुण दोनों रूप गुरु गोबिंद सिंह को मान्य है। मध्यकालीन भक्तों ने ब्रह्म के दो रूप स्वीकार किए निर्गुण–निराकार और दूसरा सगुण– साकार जो अवतारों की परम्परा का है। अगुन, अरूप, अलख, अज ब्रह्म ही भक्तों के प्रेमवश, संतों के कल्याण के लिए पृथ्वी पर अवतरित होता है। सिक्ख मत में यद्यपि ईश्वर को प्रथम रूप में प्रतिष्ठित किया गया किंतु उसके संत प्रतिपालक एवं दुष्टदलनकर्त्ता रूप की आवश्यकता को भी समझा। गुरु गोबिंद सिंह के पूर्ववर्ती सिक्ख संतों ने इसका अनेकश: वर्णन किया है –

हरि जुग–जुग भगत उपाइआ पैज रखदा आइया राम राजे,
हरणाखसु दुसटु हरि मारिया, प्रहलाद, तराइया राम राजे।

गुरु गोबिंद सिंह को ब्रह्म के दोनों रूप मान्य हैं। 'अकाल उसतुति' में उन्होंने ब्रह्म के दोनों रूपों की वंदना की है। अकाल के निर्गुण स्वरूप को स्पष्ट करते हुए वह कहते हैं –

अनखंड, अतुल प्रताप, सब थापियो जिहीथाप।
अनखेद, भेद अछेद, मुख चार गावन वेद।।

वह जन्म–मरण से परे हैं। उसका न आदि है, न अंत, न मध्य। उसके स्वरूप को कोई नहीं समझ पाया –

आदि अंत न मध्य जाको भूत भव्ये भवान / सत्य द्वापुर तृतिय कलियुग चतुरकाल प्रधान
ध्याया ध्याय थके महामुनि गाय गंधर्व अपार / हार–हाय थके सबै नहीं पाईऐ तिहपार
न वर्ण है न जाति न उसका कोई संबंधी है। जल–थल सबमें उसका वास है। न उसका कोई शत्रु है न मित्र –
वरण चिह्न जिह जान न पाता / सत्रमित्र जिह तात न भ्राता।
सबने दूरि सभन ते नेरा / जल थल नहीं अल जाहि बसेरा।

वह निराकार परमात्मा के अनेक गुणों का भी वर्णन करते हैं। उनके अगम, अगोचर ईश्वर निष्क्रिय नहीं, वह भक्तों और संतों के कष्टों का निवारण करते हैं। कबीर, दादू आदि संतों की भांति वे प्रभु को निराकार तो मानते हैं, किंतु निर्गुण नहीं। जब–जब दुष्टों का आतंक बढ़ता है, तब–तब वे देह धारण करते हैं। गीता में भी भगवान श्रीकृण ने अर्जुन से यही कहा है कि जब–जब धर्म की हानि होती है, अधर्म बढ़ता है तब–तब मैं दुष्टों को दंडित करने और साधुजनों की पीड़ा हरने के लिए पृथ्वी पर अवतरित होता हूँ। यही शब्द भेद से गुरु गोबिंद सिंह ने भी कहा है –

जब–जब होत अरिष्ट अपारा / तब–तब देह धरत अवतारा।

ध्यातव्य है कि यहां गुरु गोबिंद सिंह जी की अवतार–भावना मध्ययुगीन सगुण–भक्तों से प्रभावित होकर नहीं वरन् युग की आवश्यकता से प्रेरित है। इनके द्वारा वह आततायियों के अत्याचारों से त्रस्त जनता में विश्वास बनाए रखना चाहते थे कि हर अत्याचार का अंत होता है ताकि वह निरुत्साहित न हों। गुरु गोबिंद सिंह जी द्वारा रचित 'चौबीस अवतार' में विष्णु के चौबीस अवतारों, ब्रह्मा के सात (बाल्मीकि, कश्यप, शुक्र, बृहस्पति, व्यास, षटऋषि, कालिदास) व रुद्र के दो अवतारों (दत्तात्रेय व पारसनाथ) का विभिन्न छंदों में

वर्णन किया है। रामावतार और कृष्णावतार का वर्णन अत्यंत विस्. तार से किया है।

अतः कहा जा सकता है कि गुरु गोबिंद सिंह जी उभयविद् विचारधारा के समर्थक हैं। वह बार–बार ब्रह्म को निर्गुण के साथ – साथ सगुण कहकर संबोधित करते हैं –

कहूं त्रिगुण अतीत कहुं सुरगुन समेत हों।

एक ओर निर्गुण भक्तों की भांति वे अपने इष्ट को रूप–रेख, भेष, रंग से रहित कहते हैं– **न रागं न रंग न रूपं न रेखं / अभूत अभेष है बली अरूप राग रंग है।** तो दूसरी ओर सगुण भक्तों की भांति वह उसे कहीं साधक, तो कहीं योगी, कहीं वृंदावन में गउओं को चराने वाला और वंशी बजाने वाला कहते हैं – 'कहूँ बेन के बजैया कहीं धेनु के चरैया।'

उसके स्वरूप का वर्णन करके संत, योगी, भक्त सभी हार गए। वेद भी नेति– नेति कहकर उसे अवर्णनीय मानते हैं। उसका सही– सही वर्णन करने में कोई भी समर्थ नहीं हो पाया। इसलिए सभी ने उसे अंत में अकथनीय और वर्णनातीत कह दिया। यही असमर्थता गुरु गोबिंद सिंह जी की है। वाणी की देवी सरस्वती बोलने लगें और गणेश जी लिखने लगें तो भी उनके गुणों का बखान नहीं हो सकता –

सरसुती बकता करिके जुगि कोटि गनेसिके हाथ लिखहों।

वह सत्ता व्यापक है। जल–थल, दिशा–विदिशा सर्वत्र उसी का प्रसार है –

आदि पुरख अबिगति अबिनासी। लोक चतुर्दस जोति प्रकासी।

सगुण–भक्तों की तरह गुरु गोबिंद सिंह भगवान के नाम, रूप, गुण, लीलाधाम आदि का भी वर्णन करते हैं। उनके द्वारा प्रयुक्त नाम निर्गुणवाची भी हैं और सगुणवाची भी। उन्होंने निरंजन, अव्यक्त, अच्युत आदि निराकार ब्रह्म के विशेषणों के साथ सगुण – विषयक नामों का प्रयोग भी किया है। इन नामों में प्रणव, भगवान, श्रीपति, हरि, गोविंद, मुकुंद आदि कुछ नाम हिंदू देवताओं के हैं और कुछ रहीम, करीम, अल्लाह आदि इस्लामी परम्परा के हैं। सिक्ख–परम्परा के विशिष्ट नाम अकाल पुरुष, सत्यनाम, वाहिगुरु, निरंकार आदि का भी प्रचुर प्रयोग किया है। नाम की भांति रूप का वर्णन भी अनेकशः किया है –

विशाल लाल लोचनं मनोज मान मोचनं / सुमंत सीस सुप्रभा चक्रत चारु चन्द्रका।

आराध्य का यह रूप–वर्णन रामभक्त तुलसीदास की भांति है, जहां वह राम के लिए 'कोटि मनोज लजावन–हारे' कहते हैं। इसी प्रकार का साम्य अन्यत्र भी है जहां तुलसीदास राम के रूप वर्णन में 'सिर मुकुट कुण्डल तिलक चारु' कहते हैं। गुरु गोबिंद सिंह जी भी अपने इष्टदेव का वर्णन करते हुए यही कहते हैं – **सिरं किरीटं धारीयं।** निराकार होते हुए भी वह सृष्टि का रचयिता, पालक और संहारकर्ता है। वह भक्तवत्सल है –

हाथी की पुकार पल पाछै पहुंचत ताहि / चींटी का चिंघार पहले सुनीअत है।

रूपवान, गुणनिधान परमात्मा बड़ा कौतुकी और लीलाधारी है। वह विविध लीलाएं करता है। सृष्टि–रचना उसका प्रिय खेल है। परमात्मा की लीला का वर्णन अन्य सिख गुरुओं की भांति गुरु गोबिंद सिंह जी ने भी किया है। सृष्टि–रचना के खेल में माया उसकी हर आज्ञा का पालन करती है। जन्म–मृत्यु, निर्माण–विनाश, अच्छाई–बुराई सब उसका बनाया खेल है जिसे खेलने में आनंद आता है। सब कुछ करते हुए भी वह हर लीला में स्वयं असंग बना रहता है –

काल आपुनो नाम छपाई, अवरन के सिर दे बुरिआई / आपन रहत निरालम जगते, जान लिए जा नामै तबते।

इस प्रकार सगुण भक्तों की भांति गुरु गोबिंद सिंह जी ने अपने अकाल–पुरुष को सगुणवत् चित्रित किया है। पूरी सृष्टि उसका विराट रूप है –

सहसराछ, जाके सुभ सोहे, सहस पाद जाके तन मोहे।

उसके सगुण–निर्गुण रूप का वर्णन करते हुए अंत में यही कह देते हैं –

नहीं जान जाई कछु रूप रेखं / कहा बास ताको फिरै कऊन भेखं

कहा नाम ताको कहा कै कहावै / कहा कै बखानो कहै मैं न आवे।

वह बड़ा ही न्यारा है। उसका भेद कोई नहीं जान पाता–

पिता जनम जिम पूत न पावै / कहा तवन का भेद बतावें।

पौराणिक अवतार–भावना की भांति गुरु गोबिंद सिंह जी भी मानते हैं कि अपने परमधाम में अगुण, अखंड, अरूप, अज निराकार रूप में विराजमान ईश्वर ही भक्तों के लिए विविध रूप धारण कर पृथ्वी पर अवतरित होता है – **आपन रूप अनंतन धरहीं।** 'काल' विष्णु को अवतार धारण करने की आज्ञा देता है – **'दीयो आइस काल पुरख अपारं। धरो बावना बिसन् असटमावतारं।** वह जन–कल्याणार्थ अवतरित होता है।

छोटे भाई की भावना

समीर उपाध्याय
गुजरात

मनीषा – 'देवर जीए आपने कभी भी अपने बड़े भाई से दुकान का किराया नहीं मांगा थाए लेकिन शादी के बाद अपने किराया मांगना शुरू कर दिया। पांच साल से आप किराया ले रहे हैं। यह सब मेरी नई नवेली देवरानी की करतूत है। आते ही भाइयों के बीच मनमुटाव पैदा कर दिया।'

मोहन– 'भाभीए भैया जब किराए की दुकान में थे तब मुझे पता था कि वह दुकान एक दिन खाली करनी पड़ेगी। मैंने दूरदर्शी बनकर भैया की खातिर बैंक से लोन लेकर दुकान खरीदी है। दुकान खरीदने के लिए मैंने फूटी कौड़ी भी भैया से नहीं मांगी। आप बीच में ममता को क्यों डाल रही है।'

मनीषा– 'जाने भी दोए ममता ने ही आपको किराया मांगने के लिए उकसाया है। यह सब उसी की साजिश है। बड़ी होशियार बनी फिरती है। मैं उसे अच्छी तरह जानती हूं।'

मोहन– 'ममता मेरी जीवनसंगिनी है। फिर भी आज तक मैंने उसे यह नहीं बताया कि मैं इस दुकान का मालिक हूं। ताकि आपको उसके सामने कभी ओछापन महसूस न हो।'

मुकेश– 'मोहनए तुम्हें मेरी आर्थिक स्थिति के बारे में भी सोचना चाहिए। इस वक्त मैं पैसों की कितनी तंगी में जी रहा हूं।'

मोहनः 'भैयाए आपने आज तक घूमने फिरनेए होटलों में खाना खाने और नए कपड़ों के पीछे खर्च करने में कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। आपने कभी भी दूसरों के बारे में नहीं सोचा। आप पहले से ही सिर्फ अपने लिए ही जीते आएं हैं। बड़े होने का कर्तव्य तो कभी निभाया नहीं और मुझे सलाह दे रहे हैं! आप मेरी भावनाओं को कभी समझ नहीं पाएं। आप सिर्फ भाभी के इशारे पर ही चले हैं। अब आगे बहस करना व्यर्थ है। मैं जा रहा हूंए लेकिन इतना याद रखना कि एक दिन आपको अपनी गलती का एहसास जरूर होगा।'

थोड़ी देर के बाद दरवाजे की घंटी बजी। मुकेश ने दरवाजा खोला तो सामने एक आदमी खड़ा था। मुकेश ने उस अजनबी से पूछा। 'कहिए– इस काम के लिए आप आए हैं।'

उस आदमी ने उत्तर दिया। 'मेरा नाम आनंद श्रीवास्तव है। मैं सरकार मान्य पोस्ट एजेंट हूं। आपकी बेटी पूर्णा के नाम पांच साल पहले महीने के पंद्रह सौ रुपए का रिकरिंग खाता खुलवाया गया था। अगले महीने उसकी पांच साल की अवधि पूरी हो रही है। खाते में भरे हुए रुपए ब्याज के साथ आपकी बेटी के बचत खाते में जमा होंगे इसकी जानकारी देने के लिए आया हूं।'

मुकेश– 'लेकिन हमने तो पूर्णा के नाम का कोई खाता नहीं खुलवाया!'

आनंद श्रीवास्तव– 'यह खाता पांच साल पहले मोहन जी ने खुलवाया था और उस समय उन्होंने यह बताया था कि यह खाता उनकी भतीजी पूर्णा के नाम का है। पांच साल के बाद जब वह बड़ी हो जाएगी तब रुपये उसकी पढ़ाई लिखाई में काम आएंगे।'

आनंद श्रीवास्तव की बात सुनकर मुकेश गहरी सोच में पड़ गया। उसे बहुत ही पछतावा हुआ और अपनी पत्नी मनीषा से बोला' आज हमने एक बहुत बड़ी गलती कर दी है। एक पाप निर्दोष भाई के दिल को दुखाने का किया है और दूसरा पाप छोटे भाई की निर्दोष पत्नी पर झूठा आरोप लगाने का किया है। पांच साल से हम घर की बहू की उपेक्षा करते आएं हैं।'

मनीषा की आंखों में भी आंसू आ गएं और वह बोली। 'गलती मेरी ही है जो देवरानी के प्रति पूर्वग्रह के कारण आज तक आप दोनों भाइयों के बीच मनमुटाव पैदा करती रही और सारे दोष का आरोपण निर्दोष देवरानी पर करती रही।'

मुकेश और मनीषा शर्मिंदगी के साथ एक साथ बोल उठे– 'हम छोटे भाई की भावना को समझ नहीं पाएं।' ■

मानवता

ट्रिंग ट्रिंग३३.. ट्रिंग ट्रिंग३३ट्रिंग ट्रिंग३३.

घर के कोने में रखा हुआ टेलीफोन की घंटी लगातार बज रही थी। सोने के लिए विस्तर की और जाते – जाते पांव कुछ देर के लिऐ रुक गया। दीवाल घड़ी में समय रात्रि की 10. 45 मिनट हो रही थी। इस वक्त कौन हो सकता है ?। नवम्बर महीने की सर्द ठंडी रात में झिझकते हुए रिसीवर उठाया। हेलो३३सर नमस्कार में प्रियम्बदा बोल रही हूं। दूसरे और से कोई लड़की बोल रही थी । सर में हॉस्पिटल आई थी और यहां एक पसेंट को मरते हुए देख रही हूं। उनके दो छोटे– छोटे बच्चे हैं। वे बुरी तरह रो रहें हैं। उनके पिताजी को किसी धारदार हथियार से उनकी गला काटा गया है। पेसेंट की स्थिति काफी नाजुक है डॉक्टर दूसरे हश्वस्पिटल के लिए रेफर कर चुके हैं परंतु उनके कोई नही होने के कारण पेसेंट को दूसरे बड़े हॉस्पिटल नही भेजा गया है।हमें कुछ करना होगा आप जल्दी आने की कोशिश करें। एक सांस में पूरी बात को बिना कहीं रुके कह गई। में कुछ देर चुप हो गया। कुछ समझ नही आ रहा था। ये तो साफ मर्डर केस लग रहा है। पुलिस का लफड़ा भी होगा। फिर बिना देर किए रिसीवर रखने से पहले बोला 'ठीक है आप इंतजार करो मैं बस कुछ देर में आ रहा हूं"।

में कुछ दिनों पहले अपने व्यस्त जीवन से कुछ समय निकाल कर एक समाजसेवी संस्था से जुड़ा था। प्रियम्बदा इसी समूह से कार्यरत एक महिला सदस्य है। संस्था में कार्य करते हुए सिर्फ कुछ दिनों में ही अच्छी तरह से समझ गया था की वाहवाही तो सभी को चाहिए परंतु सही मायने में निस्वार्थ सेवा करने बहुत कम लोग ही आते हैं। सरकारी हस्पताल मेरे घर से मुस्किल से दो किलोमीटर होगा। घर से इतना रात को निकलते देख धर्मपत्नी नाराज होना जाहिर सी बात था। उनको हश्वस्पिटल किसी जरूरी काम से जा रहा हूं बोलकर जैकेट पहना और स्कूटी से हॉस्पिटल पहुंच गया। गेट पर प्रियम्बदा जी अपने बेटे रोशन के साथ इंतेजार करते हुए मिली। मुझे समझ आ गई की प्रियम्बदा अपने बेटे को दिखाने लिऐ ही हॉस्पिटल आए होंगे और यह वाकया देख कर रुक गई हैं।

"जल्दी आइए सर कुछ करना ही होगा नहीं तो ये आदमी मर भी सकता है"। प्रियम्बदा जी बैचेन हो कर जल्दी जल्दी चलने लगी।

'कोई जान पहचान वाला है क्या प्रियम्बदा जी' में अपना जिज्ञासा जाहिर किया। नहीं तो आज कल कौन किसी दूसरों के लिऐ अपनी वक्त बर्बाद करता है ।

'नहीं सर! मैं तो अपने बेटे को डॉक्टर को दिखाने आई थी परंतु ये पेसेंट की हालत देख कर छोड़ कर जाने मन नहीं किया। उनकी बातों में मानवीयता की साफ झलक दिखाई दे रही थी। मेरे मन में जो धारणा बना था वह भी खतम हो गया था।

बात करते करते पुरुष विभाग तक हम पहुंच गए। हॉस्पिटल के पुरुष विभाग में कहीं विस्तर खाली नहीं थी। व आदमी को जमीन पर सुला दिया गया था। उम्र लगभग 45 से 50 के अंदर ही होगा। गले में पट्टी की हुई थी। बदन में भी मार पीट की निशान थे । वो कुछ बडबडा रहा था। मैं झुक कर उसकी नाडी चेक करने लगा। चल रही थी। भक्क् से शराब की बदबू मेरी नाक में टकराया! में उठ खड़ा हुआ और बिना देर किए डॉक्टर के चैंबर में पहुंच गया। 'सर नमस्कार, ये पसेंट जिसे जमीन पर रखा गया है उसके बारे में जानकारी चाहिए थी। कृपया मदद करें। अब क्या स्थिति है उसकी, गंभीर बात तो नहीं है । मानो सब कुछ जान लेना मेरा हक है इस तरीके से डॉक्टर को सवाल किया मैने। डॉक्टर साहब ऊपर से नीचे तक मुझे देखते हुए पूछे 'आपकी तारीफ?'

रूद्र चरण माझी

शोधार्थी हिन्दी विभाग
दक्षिण बिहार केन्द्रीय विश्वविद्यालय
गया, बिहार

'सर में रुद्र माझी पास में ही ए.सी.पी.एल ग्रीन अपार्टमेंट में रहता हूं। इसके कोई है नहीं इसीलिए में आया हूं।' अपना परिचय देते हुए कहा।

डॉक्टर साहब मुस्कुराए और बोले 'कोई बात नही जिसका कोई नही होता उसका कोई ना कोई जरूर होता है! ये पेसेंट को जी .आर. पी पुलिस वालों ने लेकर आए थे कुछ मारपीट हुआ था। धारदार हथियार से हमला किया गया है। गला काटा गया है। बहुत खून भी बह गया है। गले की आपरेशन जरूरी है। हमारे यहां कोई व्यवस्था है नहीं। साधारण चिकित्सा कर दिया गया है। में रेफर की पेपर तयार कर दिया हूं अगर आप उन्हें बचाना चाहते हो तो तुरंत उन्हें दूसरे हस्पिटल लेकर जाना होगा। 'डॉक्टर साहब सभी कागजात मुझे पकड़ा ही दिए। में कागजात हाथ में लेते लेते यह समझ नही पा रहा था की इसका में क्या करूं। और हां जी. आर. पी वालों का फोन नंबर ये रखिए शायद आपके काम आ जाए। एक पेपर में मोबाइल नंबर लिख देते हुए डाक्टर साहब बोले 'जानते हैं रुद्र जी वो पेशेंट शराब पिया हुआ है और शायद शराब की नशा की वजह से अब तक दर्द को सहन कर ले रहा है नही तो कब का३३.'

आगे का बात जानबूझ कर अधूरा छोड़ दिए।

मै डॉक्टर साहब को धन्यवाद देते हुए सभी कागजात लेकर बाहर आ गया। बाहर प्रियम्बदा मैडम कुछ सामान्य नजर आ रही थी। मुझे देख कर बोले ष्सर कुछ पता चला। 'हां,बहुत कुछ' सिर्फ इतना बोलके डॉक्टर जो नंबर दिए थे उस नंबर को फोन लगाया। रात की 12:30 हो गई थी । इतने रात को कोई फोन उठाएंगे उम्मीद नहीं था। परंतु दूसरे और हैलो३हैलो की आवाज सुनकर एक उम्मीद जगी। 'सर में हॉस्पिटल से रुद्र माझी बोल रहा हूं। पेशेंट को तुरंत 300 किलोमीटर दूर हॉस्पिटल लेकर जाना होगा। नहीं तो बचाना मुस्किल है। सुबह तक इंतजार नहीं कर सकते। डॉक्टर से सभी फार्मालिटीज हमने पूरी कर दिया है। आप किसी को भेजिए। हम एंबुलेंस की व्यवस्था कर रहें हैं। 'जी. आर. पी पुलिस ने सकारात्मक इच्छा दिखाए। सभी ऑफिसर बुरे नहीं होते हैं। फिर मैं लग गया एंबुलेंस की व्यवस्था में। हमारे समूह के सीनियर बापी भाई को फोन कर के यथास्थिति को वर्णन किया। उन्होंने होम लोगों की काम को तारीफ करते हुए तुरंत एक एंबुलेंस की व्यवस्था कर दिए। अब स्थिति यह थी कि पेसेंट के साथ अटेंडर के रूप में कौन जाए। हॉस्पिटल में सिर्फ प्रियंबदा मैडम और मैं था। उन्होंने समूह के सभी लोगों को फोन करके बुलाए। परंतु सर्द ठंडी रात में सभी को बिस्तर प्यारी थी। कोई नही आया अब दूसरे हॉस्पिटल उनका जाना असंभव था। मेरा अगले दिन ऑफिस था। इसी असमंजस में फंसा था की जी.आर.पी पुलिस ऑफिस से फोन आ गया की उन्होंने एक कांस्टेबल को भेज रहें हैं। दिल का सारा बोझ खतम हो गया। कुछ देर में लकरा जी जी.रा.पी कांस्टेबल के साथ पेसेंट को 300 किलो मीटर के दूर रात को 2 बजे तक सफलता पूर्वक भेज दिए। सबसे महत्वपूर्ण बात यह की इस कार्य के लिए एक भी रुपए अपने पॉकेट खर्चा नहीं हुआ। सबकुछ अपने आप होते गया बस देर था केवल शुरुआत की। बहुत लोग इसलिए नहीं आ रहे थे की पैसा कौन खर्चा करेगा। उस अस्पताल में होजारों लोग जाना आना कर रहे थे परंतु किसी के आंखों में ये मरते हुआ आदमी दिखा नहीं। न ही रोते बिलखते ये बच्चे दिखे। प्रियम्बदा जी की एक फोन कॉल एक आदमी को बचाने लिए एक आदमी को उसकी परिवार को बचाने में एक सही कदम साबित हुआ।

संत सूरदास

मंजिरी 'निधि'

बड़ौदा, गुजरात

हमारे भारत में भक्ति काल को स्वर्णिम काल कहा जाता है। इस युग में कई संत हुए जिन्होंने अपनी रचनाएँ छंदो में लिखीं। उनमें से एक थे संत सूरदास। आपका जन्म 1478 में मथुरा आगरा के पास रुनकता में सास्वत ब्राम्हण परिवार 17 मे को हुआ था। आप वल्लभाचार्य जी के शिष्य थे। आपने अपनी रचनाओं से लोगों के जीवन में भक्ति रस का संचार किया और साथ ही वैचारिक क्रांति को जन्म दिया। जिससे समाज को एक नई दिशा मिली। उस समय समाज दो गुटों में बँट चुका था ।1. निर्गुण भक्ति करने वाले 2. सगुण भक्ति करने वाले। सगुण भक्ति की भी दो शाखाएं हो गई थीं ।1. राम मार्गी 2. कृष्ण मार्गी। राम मार्गी में तुलसी दास जी और कृष्ण मार्गी में सूरदास जी। कहते हैं कि इनकी और भगवान कृष्ण कि रोज बातें होती थीं और यही करण हैं कि आप ने दृष्टिहीन होने के बावजूद भी समाज के सामने कृष्ण के सभी रूपों का, कृष्ण लीलाओं का सुंदर सजीव चित्रण रखा। आपने रचनाएँ बृजभाषा मे लिखीं। इन्होंने अपनी कविताओं से सतसंग पर जोर दिया एवं राष्ट्रीय चेतना जाग्रत करने के भरपूर प्रयास किए। और इसी वजह से काव्य प्रतिभा का आलोक आज भी प्रकाशमान है। आज भी हम सूरदास जी की रचनाओं को पढ़ते हैं और सुनते हैं।